४

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

© लोक सभा सचिवालय, 1990

दिसम्बर, 1990

मूल्य : 30.00 रुपये

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अन्तर्गत प्रकाशित और प्रबन्धक, गवर्नमेंट आफ इंडिया प्रेस, फोटो लिथो यूनिट, मिन्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

शेरे कश्मीर शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में, सुविख्यात राजनेता के रूप में और जम्मू कश्मीर के प्रधानमंत्री तथा बाद में इस राज्य के मुख्यमंत्री के रूप में इस उपमहाद्वीप के इतिहास में अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी है।

यह मोनोग्राफ भारतीय संसदीय ग्रुप के तत्वावधान में लोक सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित की जा रही मोनोग्राफ श्रृंखला का ही एक भाग है ताकि उन सुविख्यात व्यक्तियों को स्मरण किया जा सके जिन्होंने देश को स्वतंत्र कराने में अमूल्य योगदान किया और इस गणतंत्र की नींव रखी। इसी संदर्भ में 5 दिसम्बर, 1990 को शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की वर्षगांठ के अवसर पर उन्हें स्मरण किया जा रहा है।

शेख अब्दुल्ला ने विभिन्न रूपों में जो जन सेवा की है, उसके प्रति आभार व्यक्त करने के लिए यह मोनोग्राफ निकाला जा रहा है। मुझे विश्वास है कि यह मोनोग्राफ उन सभी पाठकों, विद्वानों और नेताओं के लिए रूचिकर सिद्ध होगा जो किसी ऐसे व्यक्ति के जीवन की झांकी देखना चाहते हैं जो इस शताब्दी में न केवल अपने राज्य जम्मू और काश्मीर के राजनीतिक जीवन पर लगभग पचास वर्षों तक छाया रहा बल्कि जिसने इस पूरे देश की नियति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

नई दिल्ली
दिसम्बर, 1990

रवि राय
अध्यक्ष, लोक सभा

विषय सूची

प्राक्कथन

भाग-एक

उनका जीवन

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला
जीवनवृत्त
(1)

भाग-दो

अपने समकालीन व्यक्तियों की नजर में
शेख अब्दुल्ला

1

शेख अब्दुल्ला : शेरे-कश्मीर
डा० सुशीला नायर
(15)

2

शेख अब्दुल्ला का भारतीय राजनीति में स्थान
प्रो० रशीदुद्दीन खां
(24)

3

शेख अब्दुल्ला : प्रतिभावान नेता
बेगम शेख अब्दुल्ला
(29)

4

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला : स्वतंत्रता सेनानी
रेणुका राय
(31)

5

शेख अब्दुल्ला : एक श्रद्धांजलि
चौधरी रणधीर सिंह
(34)

6

एक जननायक को श्रद्धांजलि
अजीज सेट
35

7

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला : धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के समर्थक
नारायण चौबे
(41)

भाग-एक

उनका जीवन

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला: एक जीवन वृत

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला का जन्म श्रीनगर के बाह्यांचल में स्थित शलोरा ग्राम के एक मध्यवर्गीय शाल-व्यापारी परिवार में 5 दिसम्बर, 1905 को हुआ। वह स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अर्ध शताब्दी से अधिक समय तक जम्मू और कश्मीर के राजनैतिक मंच पर छाये रहे। अब्दुल्ला के पिता शेख मोहम्मद इब्राहिम का देहान्त उनके जन्म के दो महीने पूर्व ही हो गया था। वह अपने पीछे एक विधवा, पांच पुत्र और एक पुत्री छोड़ गये थे। परिवार में सबसे छोटे होने के कारण शेख अब्दुल्ला का लालन-पालन उनकी माता तथा ज्येष्ठ भाइयों द्वारा किया गया था। उनकी प्रतिभा सम्पन्नता को देखते हुए उनके भाई उन्हें उच्च शिक्षा दिलवाना तथा साधन सम्पन्न बनाना चाहते थे।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा एक स्थानीय स्कूल में हुई थी। स्कूल शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने प्रताप कालेज, श्रीनगर में प्रवेश लिया और बाद में स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के लिये इस्लामिया कालेज, लाहौर में प्रवेश लिया। वर्ष 1928 में पंजाब विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और वहां से उन्होंने 1930 में भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण की।

विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा अपने गृह राज्य (स्थानीय मुस्लिम समुदाय) से बाहर रहकर उन्हें जो अनुभव प्राप्त हुए, उससे उन्हें राजनीति में अपनी भावी भूमिका अदा करने में बहुत सहायता मिली। इस्लामिया कालेज और अलीगढ़ विश्वविद्यालय दोनों ही अपनी साम्राज्यवाद विरोधी राजनीतिक गतिविधियों तथा राष्ट्रीय चेतना के लिये विख्यात थे। इन विश्वविद्यालयों में शेख अब्दुल्ला अनेक प्रमुख मुसलमान विचारकों और जन-प्रतिनिधियों के सम्पर्क में आए जिनका उनके विचारों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इसके परिणामस्वरूप उन्हें कश्मीर को प्राचीन सामन्तवादी परम्परा से मुक्त कराने और अपनी राष्ट्रीय मुख्यधारा में सम्मिलित करने की प्रेरणा जागृत हुई।

अब्दुल्ला की राजनैतिक गतिविधियां उनके पुस्तकालय "रीडिंग रूम पार्टी" से आरम्भ हुई जिसकी स्थापना उन्होंने मुख्यतया मुसलमान जन समुदाय की निर्धनता सम्बन्धी

समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिये की गई थी। अनेक शिक्षित युवा मुसलमानों ने जो श्रीनगर के उस पुस्तकालय में एकत्र हुआ करते थे, वर्ष 1929 में महाराजा को एक याचिका प्रस्तुत की जिसमें भरती सम्बन्धी पद्धति में छूट देने का अनुरोध किया गया था जिससे शिक्षित मुसलमान सरकारी सेवा में नियुक्त किया जा सके। यहां तक कि शेख अब्दुल्ला जो भौतिक विज्ञान में एम०एस०सी० थे, को एक स्थानीय स्कूल में एक शिक्षक के रूप में अपनी आजीविका आरम्भ करनी पड़ी थी, जब उनके न्यायोचित अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया तो उनके युवा मस्तिष्क में विद्रोह की भावना जागृत हुई।

शेख अब्दुल्ला ने स्कूल शिक्षक के अपने पद से त्यागपत्र दे दिया जिससे वह उपेक्षित मुसलमान बहुसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिये सामन्तवादी और महाराजा के शासन के विरुद्ध आन्दोलन में स्वयं को पूर्णतः समर्पित कर सकें। उन्होंने रीडिंग रूम पार्टी को अपना मंच बनाया और बड़ी संख्या में शिक्षित युवा मुसलमानों को उसकी ओर आकर्षित किया। इस समय समस्त राज्य में निरंकुश और सामन्तवादी शासन के विरुद्ध असंतोष और रोष व्याप्त था। शेख अब्दुल्ला ने अपने ओजस्वी भाषण और मंत्रमुग्ध करने वाली कुरान की आयतों से शोषित मुसलमानों की आकांक्षाओं को जागृत किया। आल इंडिया कश्मीर मुस्लिम कान्फ्रेंस द्वारा आरम्भ आन्दोलन और सर मोहम्मद इकबाल जैसे प्रभावशाली प्रसिद्ध उर्दू शायर से प्राप्त समर्थन से अब्दुल्ला के इस आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला।

1931 में जब अब्दुल्ला के नेतृत्व में रीडिंग रूम पार्टी ने जामा मस्जिद में एक सार्वजनिक सभा आयोजित करनी चाही तब प्राधिकारियों ने उस पर प्रतिबंध लगा दिया। युवा आयोजकों ने उस प्रतिबंध का उल्लंघन कर सभा आयोजित की। तत्पश्चात् उन्होंने प्रतिष्ठित मुसलमानों का एक सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन के एक वक्ता को सरकार के विरुद्ध उत्तेजित और अपमानजनक भाषण देने के लिये गिरफ्तार किया गया और उस पर मुकदमा चलाया गया। 13 जुलाई, 1931 को इस मुकदमे के विरुद्ध जेल के बाहर जोरदार विरोध प्रकट किया गया जिसके परिणामस्वरूप पुलिस की गोली से 26 व्यक्ति मारे गये। शेख अब्दुल्ला ने इसका भारी विरोध किया और अन्य नेताओं के साथ उन्हें गिरफ्तार किया गया। इन गिरफ्तारियों ने आग में घी का काम किया और सरकार को बाध्य होकर इन नेताओं को रिहा करना पड़ा और मुसलमानों की कठिनाइयों पर ध्यान देने के लिये एक आयोग गठित करना पड़ा। आयोग ने मुस्लिम समुदाय को शान्त करने के लिये अनेक उपायों की सिफारिश की। उनमें से एक प्रमुख सिफारिश शिक्षित मुसलमानों को सरकारी सेवा में नियुक्त किया जाना, अब्दुल्ला और रीडिंग रूम पार्टी के अनेक नेताओं की लम्बे समय से चली आ रही मांग थी। आयोग ने भाषण देने और एसोसिएशन गठित करने संबंधी कुछ ऐसी सिफारिशें कीं, जिन्हें लोगों को अब तक दिये

जाने से इंकार किया गया था। इन गतिविधियों के परिणामस्वरूप शेख अब्दुल्ला कश्मीरी मुसलमानों के निर्विवाद नेता और उनकी लोकतांत्रिक आकांक्षाओं के प्रमुख संयोजक और रक्षक बन गए।

इन सभी सफलताओं से प्रेरित होकर, अब्दुल्ला ने मुस्लिम समुदाय के प्रमुख नेताओं को संगठित किया और 1932 में जम्मू एण्ड कश्मीर मुस्लिम कांफ्रेंस की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा करना था। अब्दुल्ला इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

इस बीच, उप महाद्वीप में व्याप्त राष्ट्रवादी आन्दोलन (नेशनलिस्ट मूवमेंट) का प्रभाव अब्दुल्ला पर भी पड़ा। वह राष्ट्रीय नेताओं, विशेषकर महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, खान अब्दुल गफ्फार खां और मौलाना अबुल कलाम आजाद के सम्पर्क में आए।

सन् 1930 के दशक के प्रारम्भ में नेहरू से मिलने के बाद उन्हें लगा कि वे उनकी तरफ खिंचते जा रहे हैं और दोनों के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्वों और समानधर्मा गुणों के कारण उन दोनों की मैत्री प्रगाढ़ होती गई।

इस समय तक वह "शेर-ए-कश्मीर" के नाम से विख्यात हो गए थे उनके सभी समर्थक अपने आपको "शेर" कहने लगे थे। वे मूल रूप से राष्ट्रवादी कश्मीरी थे जिनमें अधिकांश मुसलमान थे जो राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थक थे तथा जिनकी धर्मनिरपेक्षता में आस्था थी और वे अन्य राष्ट्रवादी नेताओं के प्रति वफादार थे। उनके विरोधी, जो स्वयं को "बकरा" कहते थे, अधिकांशतः जिन्ना के समर्थक थे। इन दो परस्पर विरोधी गुटों के बीच चले आ रहे झगड़े ने तीसवें और चालीसवें दशक में कश्मीर की राजनीतिक स्थिति को प्रभावित किया, जिस समय शेख अब्दुल्ला राष्ट्रीय क्षितिज पर उभर रहे थे।

शेख अब्दुल्ला ने अपना राजनीतिक जीवन मुसलमानों के हितों के समर्थक के रूप में प्रारम्भ किया था। सन् 1930 वाले दशक के अंत में ही उन्हें यह अनुभव हो गया था कि कश्मीर में विद्यमान सामंतवादी व्यवस्था धर्म का आदर नहीं करता है। पूरे राज्य में केवल महाराजा के आश्रित और निहित स्वार्थों वाले व्यक्ति ही ऐश कर रहे थे। वह यह जानते थे कि निम्नवर्गीय हिन्दू और सिख सामंतवाद के समान रूप से शिकार थे और सामंतवादी व्यवस्था को बदलने के लिए ऐसे सभी पीड़ित व्यक्तियों का समर्थन और योगदान लेना आवश्यक था। अपने आंदोलन को साम्प्रदायिकता से मुक्त करते हुए और व्यापक बनाने तथा उसे शेष राष्ट्र में चल रहे आंदोलन से जोड़ने की आवश्यकता उन्होंने शीघ्र ही महसूस की। इसी लिए उन्होंने सन् 1939 में उन

संप्रदायवादियों की उपेक्षा करते हुए, जो मुस्लिम अलगाववाद को बढ़ावा देने में जिन्ना का साथ दे रहे थे, मुस्लिम कांफ्रेंस को नेशनल कांफ्रेंस में परिवर्तित कर दिया।

बाद में सन् 1981 में एक साक्षात्कार में उन्होंने अपनी इस कार्यवाही को तर्कपूर्ण बताते हुए कहा था:

> ".....गैर मुसलमानों को मूलतः आम आदमी के आर्थिक उत्थान के उद्देश्य से चलाये जा रहे आन्दोलन से अलग रखना तर्कसम्मत प्रतीत नहीं होता। इसलिए हमने इस पार्टी को धर्मनिरपेक्ष स्वरूप देकर इसका नाम बदल कर नेशनल कांफ्रेंस रख दिया है।"

उन्होंने इस बात को भी स्वीकार किया कि उनका यह कार्य जवाहर लाल नेहरू के उन पर पड़े प्रभाव का परिणाम था। उन्होंने कहा था:

> "एक अत्यंत संवेदनशील और दूरदर्शी व्यक्ति के नाते जवाहरलाल नेहरू ने मुझे सलाह दी थी कि नेशनल कांफ्रेंस का विस्तार किए जाने और जमींदारों के कड़े विरोध के बावजूद गैर-मुसलमान के लिए इस संगठन के दरवाजे खोल दिए जाएं।"

प्रारम्भ में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समान ही अब्दुल्ला के नेतृत्व में नेशनल कांफ्रेंस ने कश्मीर के लोगों के लिए एक जिम्मेवार स्वशासन प्राप्त करने का लक्ष्य रखा था। नेशनल कांफ्रेंस द्वारा अपनी मांगों के समर्थन में चलाए गए शांतिपूर्ण आंदोलन को महाराजा ने कुचल डाला तथा नेशनल कांफ्रेंस के प्रेसीडेन्ट शेख अब्दुल्ला सहित कई प्रमुख नेताओं को, जिनमें गैर-मुसलमान भी शामिल थे, जेल में डाल दिया।

आम माफी के अन्तर्गत जेल से रिहाई के बाद शेख अब्दुल्ला ने राज्य में अपने निष्ठावान कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर सामंतवादी तानाशाही और शोषण से राज्य के लोगों को मुक्ति के लिए "नया कश्मीर" नाम से सामाजिक-आर्थिक उद्धार का एक घोषणा पत्र तैयार किया। इसमें मुख्य मांग यह की गई कि "भूमि का मालिक वह होना चाहिए जो उसे जोतता-बोता है। स्वतंत्रता मिलने के बाद इसी कार्यक्रम के अंतर्गत कश्मीर में सबसे पहले जमींदारी प्रथा समाप्त की गई।

सन् 1945 में मोहम्मद अली जिन्ना, शेख अब्दुल्ला और उनके कश्मीरी मुसलमान समर्थकों को राष्ट्रीयता और धर्मनिरपेक्षता के मार्ग से विचलित करने के लिए कश्मीर आए। उसने शेख से, महाराजा के विरुद्ध संघर्ष में अपनी पार्टी मुस्लिम लीग की सहायता करने हेतु उसमें मिल जाने की अपील की। शेख अब्दुल्ला ने न केवल इस अपील को अस्वीकार किया बल्कि जिन्ना के विरुद्ध एक अभियान भी चलाया जिसके कारण जिन्ना को राज्य से शीघ्र ही वापस लौटना पड़ा।

जिन्ना से अपनी बातचीत के दौरान शेख अब्दुल्ला ने जोर देकर कहाः

".....मुसलमानों को भी धर्म सदा एकसाथ बांधे नहीं रख सकता। हमारे देश में अनेक भाषा-भाषी लोग हैं, अनेक जातियां हैं, फिर भी सभी परस्पर मिलजुल कर रहते हैं, जहां लोग आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं और प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेष सांस्कृतिक धरोहर है। इस दृष्टि से एक धर्म विभिन्न धर्मों के अनुयायियों को आपस में बांध कर कैसे रख सकता है।"

बंग्लादेश के बनने से शेख के इस कथन की पुष्टि हो गई। संस्कृति भाषा और भौगोलिक दृष्टि से भिन्न तथा आर्थिक विषमता से ग्रस्त दो क्षेत्रों को केवल धर्म बहुत समय तक आपस में बांधे नहीं रख सकता है।

शेख अब्दुल्ला महाराजा के विरुद्ध अभियान में राष्ट्रवादियों और धर्मनिरपेक्षतावादियों का नेतृत्व करते रहे तथा अविभाज्य भारत की जोरदार ढंग से पैरवी की। आल इंडिया स्टेट्स पिपुल्स कान्फ्रेंस को बनाने में इन्होंने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इस संस्था ने रियासतों में राष्ट्रवादी ताकतों को इकट्ठा किया और वह कई साल तक इसके जनरल सेक्रेट्री रहे तथा सन् 1946 में नेहरू के बाद वह इसके प्रेसीडेण्ट बने। यह संगठन सम्पूर्ण स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कांग्रेस का निकट सहयोगी बना रहा।

वर्ष 1946 में उन्होंने महाराजा के विरुद्ध व्यापक पैमाने पर कश्मीर छोड़ो आन्दोलन चलाया। इस पर उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। नेहरू ने जन-आन्दोलन के प्रति अपना समर्थन व्यक्त करने के लिए कश्मीर का दौरा किया। हालांकि, महाराजा का रुख भारतीय नेताओं के प्रति सत्कार योग्य नहीं था।

जब देश स्वतंत्र हुआ और इसका विभाजन हुआ, तब महाराजा ने राज्य को पृथक राज्य बनाने के बारे में विचार किया। सम्प्रदायवादी मुसलमानों ने शेख अब्दुल्ला के मौके पर उपस्थित न रहने का लाभ उठाते हुए कश्मीर का पाकिस्तान में विलय करने पर जोर डाला। राज्य में तेजी से बिगड़ती हुई स्थिति और जनता के दबाव को देखते हुए महाराजा ने जनता की इच्छा के अनुरूप शेख को जेल से रिहा कर दिया।

इस स्थिति का लाभ उठाने के प्रयास में, पाकिस्तान ने सीमा पार से राज्य में हथियार बन्द घुसपैठिए भेजे। इन कबाइलियों के दबाव को न झेल पाने के कारण राज्य का प्रशासन ध्वस्त हो गया और महाराजा को राजधानी छोड़नी पड़ी। इससे शेख अब्दुल्ला को भारी चुनौती का सामना करना पड़ा और उन्होंने सोच-समझकर शीघ्र ही कार्यवाही की। उन्होंने पाकिस्तान-समर्थित घुसपैठियों का मुकाबला करने के वास्ते लोगों को अपनी मातृभूमि की रक्षा करने हेतु तैयार किया और महाराजा को इस बात के लिए मजबूर किया

कि वे कश्मीर के भारत में विलय के लिए सहमत हो जाएं, ताकि भारतीय सेना उनकी रक्षा के लिए आ सके। भारतीय सेना के उनकी रक्षा के लिए आने तक, शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में कश्मीरी लोगों ने घुसपैठियों के विरुद्ध श्रीनगर में कई दिनों तक मोर्चा सम्भाले रखा।

राज्य के लोगों की इस महान उपलब्धि से गांधी जी बहुत प्रभावित हुए। इस बारे में एक नवम्बर, 1947 को प्रार्थना सभा में उन्होंने कहा:

> "शेख अब्दुल्ला मुसलमानों और गैर-मुसलमानों, दोनों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। कश्मीर की धरती पर मुसलमान और हिन्दू, दोनों धर्मों का वजन आंका जा रहा है। यदि दोनों धर्मों के लोग एक ही दिशा में मिलजुल कर प्रयास करें, तो सफलता निश्चित है। मेरी आत्मा की आवाज है और मैं प्रार्थना करता हूं कि इस उपमहाद्वीप के लिए कश्मीर एक दीप-सतंभ के रूप में उभरेगा।"

शेख के प्रति यह सब से अच्छी प्रशंसा थी। यह विचारणीय बात है कि गांधी जी के यह विचार इस तथ्य से भी प्रभावित थे कि विभाजन के पश्चात्, जहां देश में बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे, कश्मीर अधिकांशतः इस सबसे अप्रभावित रहा। उन संकटपूर्ण दिनों में शेख के लोग सड़कों पर यह नारा लगाते थे— "शेर-ए-कश्मीर का क्या इरशाद — हिन्दु, मुस्लिम, सिख इत्तहाद" (शेर-ए-कश्मीर का संदेश) — (हिन्दु, सिख, मुसलमानों की एकता)। यह एक सामयिक संदेश था। उन कठिन वर्षों के दौरान, राज्य में साम्प्रदायिक सद्भावना कायम रखने का मुख्य श्रेय शेख अब्दुल्ला को जाता है।

भारतीय सेनाओं द्वारा राज्य से घुसपैठियों को निकाल बाहर करने के भागीरथ कार्य के दिनों में अक्तूबर, 1947 के दौरान आपातकालीन प्रशासन के प्रमुख के रूप में शेख अब्दुल्ला को शपथ दिलाई गई। ऐतिहासिक लाल चौक में भारी जन सभा को संबोधित करने के लिए नेहरू श्रीनगर पहुंचे और शेख ने शेष देश के साथ राज्य के विलय के प्रतीक के रूप में नेहरू जी से सहयोग का हाथ बढ़ाया। बैठक के दौरान उन्होंने नेहरू से कहा:

> "मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि कश्मीर आपका है। विश्व की कोई भी ताकत हमें अलग नहीं कर सकती। प्रत्येक कश्मीरी महसूस करता है कि वह भारतीय है और भारत ही उसकी मातृभूमि है।"

सन् 1948 में, भारतीय दल के सदस्य के रूप में उन्होंने पेरिस में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की बैठक में भाग लिया। इसमें कश्मीर के भविष्य पर चर्चा हुई थी। उन्होंने

अपनी सरकार की वैधता और जनमत संग्रह कराने के लिए एक तटस्थ अन्तरिम सरकार के गठन का विरोध किया। उस बैठक में, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि:

> "हम सुरक्षा परिषद् के समक्ष यह सिद्ध करते हैं कि कश्मीर और कश्मीर के लोगों के कानूनी और संवैधानिक रूप से विलय के लिए भारत की प्रभुसत्ता स्वीकार की है और पाकिस्तान को विलय के बारे में प्रश्न करने का कोई अधिकार नहीं है.....।"

पैरिस से लौटने के पश्चात्, मार्च, 1948 में उन्हें कश्मीर के प्रधान मंत्री के रूप में शपथ दिलाई गई। प्रधान मंत्री का पद-भार ग्रहण करने के बाद, शेख ने राज्य के लिए व्यापक सुधार कार्यक्रम प्रारम्भ किया। जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया और राज्य ने बड़े भूस्वामियों की सम्पत्ति को भूमिहीन वर्गों में बांटने के लिए अपने अधिकार में ले लिया। लोगों के ऋण माफ किये गये। वंशानुगत शासन को समाप्त कर दिया गया तथा युवराज कर्ण सिंह को राज्य का उपाधिकारी प्रमुख सदर-ए-रियासत बनाया गया।

जून, 1949 में शेख को भारत की संविधान सभा का सदस्य बनाया गया तथा कश्मीर से एक संसद सदस्य के रूप में नामज़द किया गया। संविधान सभा के एक सदस्य के रूप में वह हमारे संविधान, जिससे भारत एक गणतंत्र बना, के हस्ताक्षरकर्ता थे, शेख और उनके सहयोगियों ने इस बात को ध्यान में रखा कि अनुच्छेद 370 को, जिसमें राज्य के प्रबल मुस्लिम समुदाय के इस भय को दूर करने का प्रावधान है कि वे देश के अन्य प्रांतों में हिन्दुओं द्वारा परेशान किए जाएंगे, प्रारूप में शामिल किया जाये। जुलाई, 1952 में उन्होंने नेहरू के साथ एक समझौता किया, जिसमें जम्मू और कश्मीर को भारतीय संघ के अंतर्गत विशेष दर्जे के एक राज्य की गारंटी दी गई थी। प्रधान मंत्री के रूप में शेख अब्दुल्ला ने, 1948 से 1953 तक के अपने पांच वर्षों के कार्यकाल में राज्य के लिए काफी उपलब्धियां प्राप्त कीं। जागीरदारी/जमींदारी प्रथा समाप्त करना, बड़े भूस्वामियों की सम्पत्ति को अधिकार में लेना, भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करना, ऋण माफी, भूमिहीनों को भूमि हस्तांतरित करना, शैक्षिक संस्थाओं को पुनर्गठित करना तथा जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय की स्थापना करना आदि उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धियां थीं।

फिर भी, कश्मीर का भारत के साथ अधिमिलन और भारतीय संघ के अधीन इसे विशेष दर्जा मिलने से संबंधित शेख अब्दुल्ला के आशय में वर्ष 1953 के प्रारम्भिक दिनों में ही साफ-साफ परिवर्तन दिखाई देने लगा था। 1953 तक कोई भी भारत, इसके नेताओं तथा कश्मीर के प्रति भारत की नीति पर उसकी घोषणाओं के अभिप्राय अथवा ईमानदारी पर शंका नहीं कर सकता था। दिनांक 25 जनवरी, 1951 को शेख अब्दुल्ला

ने बम्बई में एक प्रैस सम्मेलन में इस बात को स्पष्ट किया कि क्यों उनके राज्य ने भारत में शामिल होने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने कहा था कि:

> "कश्मीर के लोग यह जानते हैं कि वे तब तक विकास नहीं कर सकते, जब तक वे धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र के अंतर्गत न हों। उन्हें भारत के लोगों से स्नेह, सहानुभूति और सक्रिय मदद लगातार मिलती रही है।"

फिर 11 फरवरी, 1951 को मद्रास में बोलते हुए उन्होंने कहा था कि:

> "भूतकाल में भारत और कश्मीर के लोगों ने समान कष्ट भोगे हैं तथा उनके एक से आदर्श रहे हैं और आज हम अपने भाग्य को शेष भारत के साथ जोड़ते हैं क्योंकि यह धर्मनिरपेक्षता, प्रजातंत्र और प्रगति में विश्वास रखता है।"

दुर्भाग्यवश, 1953 से 1964 के शुरू तक, लगभग एक दशक के दौरान राज्य को उनके नेतृत्व का लाभ नहीं मिल सका, क्योंकि उन्हें उनकी कतिपय गतिविधियों के कारण, जो न तो राज्य के और न ही देश के हित में थीं, जेल भेज दिया गया था।

यह शेख अब्दुल्ला की गहरी राष्ट्रवादी नैसर्गिकता ही थी कि लम्बे समय तक जेल में बंद रहने के बावजूद वह कटु व्यक्ति नहीं बने। उन्होंने एक बार फिर अपने आप को राज्य के लोगों की सेवा में लगाया तथा इसकी कमान संभाली। अब्दुल्ला ने यह भी महसूस किया कि भारत और पाकिस्तान के बीच व्यापक मैत्रीपूर्ण ढांचे के अंतर्गत ही इसका स्थायी हल ढूंढा जा सकता है। उनके लिए घाटी की भाषायी और सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखना उतना ही महत्वपूर्ण था, जितना कि उनकी धार्मिक पहचान को सुरक्षित रखना। उन्हें विश्वास था कि मुस्लिम-बहुसंख्यक कश्मीर, मुस्लिम-पाकिस्तान की अपेक्षा हिन्दू-बहुसंख्यक वाले भारत में ही अपनी पहचान बनाये रख सकता है। परन्तु साथ ही साथ, पाकिस्तान में पराजय की भावना बने रहने से भारत और पाकिस्तान के बीच घनिष्ठ संबंध का उनका लक्ष्य तथा कश्मीर के लोगों के लिए स्थायी शांति हेतु उनकी अभिलाषा पूरी नहीं हो सकती थी।

वर्ष 1964 में अपनी रिहाई के बाद वह इस मसले पर नये बोध के साथ दिल्ली में नेहरू तथा अन्य नेताओं से मिले। भारत सरकार ने उन्हें पाकिस्तानी नेताओं के साथ बातचीत करने के लिए प्राधिकृत किया तथा तत्पश्चात् वह पाकिस्तान गये। वह राष्ट्रपति अयूब खां और नेहरू के बीच 16 जून, 1964 को होने वाली बैठक की व्यवस्था कराने में सफल रहे। परन्तु मई, 1964 में नेहरू की अचानक

मृत्यु हो जाने के कारण इस योजना को कार्यरूप नहीं दिया जा सका। अब्दुल्ला उस समय पाकिस्तान में थे और जब उन्होंने नेहरू की मृत्यु का समाचार सुना, वह अपने पसंदीदा नेता की मृत्यु पर एक छोटे बच्चे की तरह सिसकते हुए घंटों तक रोये।

नेहरू की मृत्यु के पश्चात्, शेख अब्दुल्ला वर्ष 1965 में मक्का की तीर्थयात्रा पर गये। अपनी वापसी-यात्रा के समय वह जेद्दाह, बगदाद, काहिरा, लन्दन और अल्जियर्स भी गये। इन सभी स्थानों पर उनके भाषणों में उनके भारत के विरोध का स्वर सुनाई पड़ा। अल्जियर्स में चीन के नेता चाऊ-एन-लाई के साथ उनकी लम्बी बैठक हुई। 1960 के दशक के प्रारम्भ में, भारत पर चीन के आक्रमण के संदर्भ में शेख की इस कार्यवाही को देखकर भारतीय नेताओं को काफी आघात पहुंचा तथा सरकार ने उनके पासपोर्ट को जब्त कर लिया। दिल्ली वापिस आने पर उन्हें शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिया गया और तमिलनाडु में कोडईकनाल के कोहिनूर पैलेस* में उन्हें नजरबंद कर दिया गया। उन्हें बाद में जनवरी, 1968 में रिहा किया गया।

बाद में शेख अब्दुल्ला की रिहाई के पश्चात्, उन्हीं के नेतृत्व में कश्मीर स्टेट पीपल्स कनवेंशन ने दो वर्षों से अधिक समय तक विचार-विमर्श करने के उपरान्त जून, 1970 में यह संकल्प किया कि कश्मीर समस्या के समाधान में इसके सभी क्षेत्रों के हितों को ध्यान में रखना चाहिए, इसकी धर्मनिरपेक्ष और प्रजातांत्रिक शक्तियों को मजबूत बनाना चाहिए तथा यह स्वतंत्रता आन्दोलन की गरिमा के अनुरूप होना चाहिए। तथापि, सम्मेलन के बाद, वर्ष 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध को देखते हुए, शेख के वक्तव्यों के कारण जनवरी, 1971 में भारत सरकार को उन्हें उनके गृह राज्य से अलग रखने के लिए एक बार फिर मजबूर होना पड़ा।

युद्ध के उपरान्त भारत के प्रति उनके बेहतर रुख में प्रत्यक्ष रूप से पुनः बदलाव आया। वर्ष 1971 में बंगलादेश बनने के बाद पाकिस्तान की इस कल्पना का भांडा फूट गया कि पाकिस्तान धर्म पर आधारित देश है, इसलिए शेख अब्दुल्ला ने महसूस किया कि कश्मीर के हित भारत के साथ वास्तविक और पूर्णरूप से अपनी पहचान बनाये रखकर ही सुरक्षित हैं। उन्होंने नई वास्तविकताओं पर विचार करते हुए मार्च 1972 में घोषणा की कि भारत सरकार के साथ उनका झगड़ा भारत में विलय के मामले पर नहीं बल्कि भारत के अंदर राज्य को स्वायत्तता प्रदान करने के मामले पर है। इस वक्तव्य के आधार पर, शेख और भारत सरकार के बीच लम्बा विचार-विमर्श चला, जिसके

*उनकी मृत्यु के पश्चात् तमिलनाडु सरकार ने इस पैलेस का नाम स्वर्गीय शेख के नाम पर रख दिया है।

परिणामस्वरूप शेख अब्दुल्ला और प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी के बीच वर्ष 1975 में कश्मीर के बारे में नया समझौता हुआ।

इस समझौते के अन्तर्गत, शेख अब्दुल्ला ने जम्मू और कश्मीर राज्य का अन्तिम रूप से भारत संघ में विलय स्वीकार कर लिया और भारत सरकार ने गारंटी दी कि राज्य को विशेष दर्जा प्रदान करने वाली संविधान की धारा 370 बनी रहेगी। इस प्रकार दोनों पक्ष वर्ष 1953 के संकट से पहले की स्थिति पर आ गए। वर्ष 1975 में कांग्रेस विधान मंडल दल के समर्थन से शेख अब्दुल्ला को राज्य के मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। वर्ष 1977 में, लोक सभा में कांग्रेस की पराजय के परिणामस्वरूप शेख ने राज्य विधान सभा भंग कर दी और नेशनल कांफ्रेंस के झंडे तले अपने बलबूते पर चुनाव लड़ा और चुनावों में भारी विजय प्राप्त की। तत्पश्चात् एक बार फिर वह अपने बलबूते पर राज्य के मुख्यमंत्री बन गये। वे इस पद पर अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले तक प्रभावशाली ढंग से कार्य करते रहे और मृत्यु से कुछ दिन पूर्व अपने पद का उत्तरदायित्व अपने बड़े लड़के डा० फारूख अब्दुल्ला को सौंप दिया।

8 सितम्बर, 1982 को राष्ट्र ने कश्मीर के इस महान सपूत को खो दिया, जिसमें राज्य के लोगों से विश्वासपूर्वक यह कहने का साहस था कि कश्मीर उनका है और महाराजा का नहीं। और वे एक सामन्तवादी राज्य के प्रति विद्रोह करें तथा इसे समाजवादी व्यवस्था में बदलें।

उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में इस्लाम के नाम पर कश्मीरी पहचान बनाये जाने का विरोध किया। एक कट्टर मुसलमान होते हुए भी उनकी निष्ठा देश की सीमाओं के प्रति थी। उनका विश्वास था कि उनके राज्य में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा करना उनका पावन कर्तव्य है और साम्प्रदायिक तनावों का वे अक्सर दृढ़ता से मुकाबला किया करते थे।

लम्बे समय तक नज़रबन्द रहने के बावजूद उनमें कोई दुर्भावना नहीं थी और उस संवेदनशील राज्य में उत्पन्न होने वाली विशेष घरेलू बाध्यताओं के फलस्वरूप समय-समय पर आंशिक रूप से उत्तेजक मनःस्थिति के होते हुए भी वे धर्मनिरपेक्षता के प्रति और भारत में कश्मीर के विलय को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए वचनबद्ध थे।

राज्य की राजनीति का धर्मनिरपेक्षीकरण और रूढ़िवादी मुल्लाओं से लोकप्रिय आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथ में लेना इतिहास में शेख की बहुत बड़ी राजनैतिक उपलब्धि है। उनके शक्तिशाली व्यक्तित्व ने कश्मीर के प्रबल प्रेमी और इसकी पृथक पहचान बनाये रखने की अपनी प्रतिष्ठित छवि को बिना क्षति पहुंचाए ही एक ओर अपने राज्य के अन्दर विविध क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक भावनाओं के बीच अत्यावश्यक सन्तुलन कायम किया और दूसरी ओर कश्मीरी उप-राष्ट्रवाद का भारतीय राष्ट्रवाद में सामंजस्य

स्थापित किया। इसका कारण यह था कि वे यह चाहते थे कि कश्मीर की अलग पहचान बनी रहे और वहां की जनता अपना भविष्य संवारने के अवसर से वंचित न हो, इसलिए वे कश्मीर का विशेष दर्जा बनाए रखने पर जोर देते रहे। अन्य समुदायों के बीच उनकी धर्मनिरपेक्ष भावना भी अत्यधिक विश्वसनीय थी। वर्ष 1947 में पाकिस्तान आक्रमण के विरुद्ध, कश्मीर में भारतीय सेना के पहुंचने से पहले, निहत्थे कश्मीरी मुसलमानों को संगठित करने में इनकी वीरोचित भूमिका के लिए भी उन्हें याद किया जाएगा।

जम्मू एवं कश्मीर की जनता के लिए वे एक दार्शनिक, पथ प्रदर्शक तथा परामर्शदाता भी थे और जनता पर उनकी मजबूत पकड़ थी। उनके व्यक्तित्व में एक चुम्बकीय आकर्षण था तथा उनका अपना करिश्मा था। यह हमारा दुर्भाग्य है कि शेरे-कश्मीर की मृत्यु उस समय हुई जिस समय देश के अन्य भागों की तरह जम्मू एवं कश्मीर भी विभिन्न सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं से जूझ रहा था। वे इस क्षेत्र के लिए एकीकारक की भूमिका निभा सकते थे और इस क्षेत्र में सजनैतिक और सामाजिक स्थिरता कायम करने के लिए कुछ उपाय कर सकते थे। उन्होंने भारत से जम्मू एवं कश्मीर को अलग करने वाले अनुच्छेद 370 को कुछ अलग रूप से देखा। उनका विश्वास था कि यह स्वतंत्र और सम्मानित समाज के लिए एक सुदृढ़ बन्धन एवं प्रतीक के रूप में है।

आज जब यह क्षेत्र साम्प्रदायिक क्षेत्रीय और अलगाववादी गुटों में बंटता जा रहा है और जम्मू और कश्मीर सहित कई राज्य विघटनकारी ताकतों का शिकार हो रहे हैं तो ऐसी स्थिति में श्रेष्ठ श्रद्धांजलि जो हम इस महान देशभक्त की यादगार में अर्पित कर सकते हैं, जो कि कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग बनाए हुए पांच दशक से अधिक अवधि तक कश्मीर की जनता के कल्याण और उसकी अलग विशिष्ट पहचान बनाए रखने के लिए अकेले लड़ता रहा, वह यह होगी कि हम विघटनकारी ताकतों, राष्ट्रविरोधी ताकतों को अलग-थलग करने हेतु संगठित प्रयास करें जिससे इस राष्ट्र की मुख्य धारा में संयोजन सुदृढ़ हो जाए। निःसंदेह वह न केवल देश का बल्कि जम्मू एवं कश्मीर का एक चमकता सितारा था।

सन्दर्भ

अब्दुल्ला, शेख मोहम्मद		**जम्मू एण्ड कश्मीर कान्सिटट्यूएन्ट असेम्बली: प्रारम्भिक भाषण** (श्रीनगर, 1951)
		कश्मीर अपील टू वर्ल्ड कनसाइन्स संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भाषण (5 फरवरी, 1948)
भास्करानन्द		**कश्मीर कालमून** (शिमला, 1956)
सक्सेना, एच० एल०		**दि ट्रेजेडी आफ कश्मीर** (नई दिल्ली, 1968)
वशिष्ठ, सतीश		**"शेख अब्दुल्ला दैन एण्ड नाउ"**— (नई दिल्ली, 1968)·
दि टाइम्स आफ इंडिया	(नई दिल्ली)	9, 10 और 12 सितम्बर, 1982
दि हिंदुस्तान टाइम्स	(नई दिल्ली)	9 और 10 सितम्बर, 1982
दि पैट्रियट	(नई दिल्ली)	—वही—
दि इण्डियन एक्सप्रेस	(नई दिल्ली)	—वही—
दि टाइम्स	(लन्दन)	10 सितम्बर, 1982

भाग-दो

अपने समकालीन व्यक्तियों की नजर में शेख अब्दुल्ला

1

शेख अब्दुल्ला—शेरे-कश्मीर

डा० सुशीला नायर*

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला, जिन्हें आम तौर से शेरे-कश्मीर (कश्मीर का शेर) के रूप में जाना जाता था, का जन्म वर्ष 1905 में श्रीनगर के निकट एक गांव में हुआ था। उनका परिवार शाल का व्यापार करता था। शेख साहेब के पिता का देहान्त उनके जन्म से कुछ सप्ताह पूर्व हो गया था और उनका लालन-पालन उनकी माता एवं बड़े भाइयों ने किया था।

श्रीनगर में अपनी स्कूली शिक्षा और प्रारम्भिक कालेज शिक्षा पूरी करने के बाद शेख अब्दुल्ला को उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु पहले लाहौर और उसके बाद अलीगढ़ भेजा गया। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से ही उन्होंने वर्ष 1930 में एम०एस०सी० की डिग्री प्राप्त की। तदनुपरान्त उन्होंने अध्यापन कार्य शुरू किया। लेकिन इसमें उनका मन नहीं लगा। उन्होंने सार्वजनिक कार्य करने का दृढ़ निश्चय लिया। उन्होंने पाया कि घाटी के मुसलमानों पर हरि सिंह डोगरा शासन का अत्याचार हो रहा है तथा उनके लिए रोजगार के अवसर लगभग समाप्त हो गए हैं। इस बात का उन्हें व्यक्तिगत अनुभव तब हुआ जब उन्होंने स्वयं राज्य सरकार में रोजगार प्राप्त करने का प्रयास किया। वास्तव में नागरिक प्रशासन में उच्च पद पंजाबियों के लिए आरक्षित कर दिए गए थे और सेना में एकमात्र डोगरा लोगों के लिए ही आरक्षण था। राज्य की असैनिक अथवा सैनिक सेवाओं में कश्मीरी लोगों के लिए, चाहे वे हिन्दू हों अथवा मुसलमान या लद्दाख के लोग हों, रोजगार के कोई अवसर नहीं थे।

शेख अब्दुल्ला ने अपने जैसे कुछ अन्य युवा व्यक्तियों के साथ, जो अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के भूतपूर्व छात्र थे, इस संबंध में चुनौती देने का निर्णय किया। लेकिन यह

*अध्यक्षः कस्तूरबा हेल्थ सोसायटी और निदेशक, महात्मा गांधी इन्स्टिट्यूट ऑफ मैडिकल साइन्सेज; और सभापति, कस्तूरबा गांधी नेशनल मेमोरियल ट्रस्ट

कोई आसान कार्य नहीं था। कश्मीर के मुसलमान गरीबी से ग्रस्त थे, वे पूर्णतया निरक्षर थे और जन-संघर्ष के सन्देश को समझने में असमर्थ थे। वे केवल मुल्लाओं (धर्मगुरुओं), विशेषकर श्रीनगर के दो मीर वाइजों की बात समझते थे और उसका पालन करते थे। इसलिए शेख और उनके सहयोगियों ने सामन्तवादी शासन के विरुद्ध अपना अभियान चलाने के लिए मुल्लाओं और इस्लाम का प्रयोग करने का निर्णय किया। अतः मस्जिदों से यह आह्वान किया गया कि मुसलमानों को महाराजा की सरकार और उसके कट्टरपंथी हिन्दुओं के विरुद्ध एक हो जाना चाहिए।

इसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगे हुए। 13 जुलाई, 1931 को शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। लेकिन इससे व्यापक अशांति उत्पन्न हुई, जो साम्प्रदायिक दंगों में बदल गई और इनमें कमी नहीं आई। अनेक स्थानों पर गोली चलना और लाठी चलना आम बात हो गई। जिसके परिणामस्वरूप फौज़ी कानून (मार्शल लॉ) लागू किया गया।

1932 के अन्त में शान्ति कायम हुई, भारत सरकार ने उक्त दंगों और उनके कारणों की जांच करने के लिए एक आयोग गठित किया। आयोग ने यह सिफारिश की कि कुछ धार्मिक भवनों को मुसलमानों को लौटा दिया जाये, सब के लिए प्राइमरी शिक्षा की व्यवस्था की जाए और सरकारी सेवाओं में प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यताओं को कम किया जाए ताकि मुसलमानों को भी सरकारी सेवाओं में प्रवेश का अवसर मिल सके। आयोग ने आगे यह भी सिफारिश की कि यहां 75 सदस्यों की एक विधान सभा का गठन किया जाए जिसमें 33 निर्वाचित सदस्य हों। महाराजा ने तत्परता से इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया।

2

शीघ्र ही शेख अब्दुल्ला और उनके सहयोगियों ने यह महसूस किया कि उन्हें महाराजा के विरुद्ध अपने संघर्ष में राज्य के अल्पसंख्यक हिन्दुओं को भी शामिल करना पड़ेगा। वर्ष 1938 में मुस्लिम कान्फ्रेंस ने अपना नाम बदलकर नेशनल कान्फ्रेंस रखने का निर्णय किया और इस प्रकार हिन्दुओं और अन्य अल्पसंख्यकों के लिए अपने दरवाजे खोल दिए। इस प्रकार यह संगठन दिनांक 11 जून, 1939 को अस्तित्व में आया और शेख अब्दुल्ला इसके प्रमुख नेता बने। इसकी कार्यसमिति में हिन्दुओं और सिखों को भी शामिल किया गया।

अक्तूबर, 1939 में शेख अब्दुल्ला की अध्यक्षता में हुए नेशनल कांफ्रेंस के पहले अधिवेशन में "राष्ट्रीय मांग" रखी गई और वह थी विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी एक कार्यकारिणी सहित "महाराजा के संरक्षण में उत्तरदायी सरकार"। विधानमंडल पूर्णतया

निर्वाचित सदस्यों से गठित हो तथा यह निर्वाचन वयस्क मताधिकार और संयुक्त निर्वाचन पद्धति पर आधारित हो।

युद्ध के दौरान शेख अब्दुल्ला और नेशनल कांफ्रेंस ने सरकार का साथ दिया, क्योंकि शेख ने युद्ध को फासिस्ट-विरोधी संघर्ष के रूप में लिया। उन्होंने कश्मीर के लोगों को अकाल की विध्वंसता से बचाने के लिए खाद्य समितियों का गठन किया।

धीरे-धीरे शेख अब्दुल्ला का रुझान समाजवाद की ओर हो गया। वह रूसी क्रांति और उस देश में व्याप्त समाजवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुए। यह प्रभाव बाद में नाजी जर्मनी के विरुद्ध रूस की विजय से और अधिक सुदृढ़ हो गया। वह जवाहरलाल नेहरू के भी घनिष्ठ मित्र और प्रशंसक थे, जवाहरलाल नेहरू भी इनका इतना ही सम्मान किया करते थे।

लड़ाई के समाप्त होते ही नेशनल कांफ्रेंस ने न केवल महाराजा के अधीन एक जिम्मेवार सरकार की मांग की बल्कि उसने कश्मीरियों के "डोगरा घराने के तानाशाही शासन से पूर्ण स्वतंत्रता के अधिकार" की भी मांग की। इसने अमृतसर में की गई सन् 1946 की उस संधि को समाप्त करने की मांग की, जिसके द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 75 लाख रुपये के भुगतान के बदले कश्मीर की प्रभुसत्ता का हस्तांतरण महाराजा गुलाब सिंह को कर दिया था।

इस समय शेख अब्दुल्ला ने कश्मीरियों के संघर्ष को भारतीयों के स्वतंत्रता संघर्ष के अंग के रूप में देखा, जो उस समय अपने अंतिम किन्तु महत्वपूर्ण दौर में था। उन्होंने कहा कि रियासती शासन व्यवस्था को समाप्त करने की मांग "अंग्रेजो भारत छोड़ो" की मांग का तर्कसंगत विस्तार मात्र है।

20 मई, 1946 को जब शेख अब्दुल्ला "कैबिनेट मिशन" के साथ बातचीत में व्यस्त जवाहरलाल नेहरू के आमंत्रण पर दिल्ली आ रहे थे तो उन्हें महाराजा की पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। जवाहरलाल नेहरू ने शेर-ए-कश्मीर की गिरफ्तारी की निंदा की।

जवाहरलाल नेहरू इन घटनाओं से इतने विह्वल हुए कि उन्होंने कश्मीर जाने का निर्णय लिया। उन्होंने महाराजा को सूचित किया कि वह 19 जून को श्रीनगर जायेंगे परन्तु राज्य प्राधिकारियों ने उन्हें आने की अनुमति नहीं दी। इस प्रतिबंध का उल्लंघन करके नेहरू कश्मीर गये। 20 जून को राज्य की पुलिस ने उन्हें हिरासत में ले लिया था। इस निरंकुश कार्यवाही पर सम्पूर्ण भारत में रोष की लहर दौड़ गई। कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद नहीं चाहते थे कि नेहरू उस समय दिल्ली से बाहर रहें, जब कि देश के भविष्य के बारे में ब्रिटिश सरकार के साथ बातचीत निर्णायक स्थिति में थी। माउंटबेटन ने भी

भारत के भावी प्रधान मंत्री की गिरफ्तारी पर चिंता व्यक्त की। नेहरू को अगले दिन रिहा करना पड़ा।

3

शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल कांफ्रेंस ने कश्मीरी जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष किया। अधिकांश कश्मीरी मुसलमान ऐसे कश्मीरी पंडित और अन्य हिन्दू थे जिन्होंने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया था किन्तु जिनमें अधिकांश हिन्दू प्रथाएं प्रचलित थीं। पंजाब के मुसलमानों जैसी धर्मांधता और आक्रामकता कश्मीर मुसलमानों में नहीं थी। वहां सूफियों का प्रभाव भी था जो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच दोस्ताना संबंधों को बढ़ावा देने के लिए हमेशा सक्रिय रहता है। उसका परिणाम यह हुआ कि जम्मू और कश्मीर में हिन्दू और मुसलमान दोस्तों की तरह रहते थे और दोनों समुदायों के बीच घनिष्ठ संबंध थे। नेशनल कांफ्रेंस के सदस्य मुसलमान और हिन्दू दोनों ही थे।

नेशनल कांफ्रेंस, जो जनता के प्रजातांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी तथा महाराजा, जो सत्ता छोड़ना नहीं चाहते थे, के बीच लगातार संघर्ष चलता रहा। भारत के अन्य राज्यों की तरह, यह संघर्ष भी लम्बे समय तक चला।

सन् 1947 में शेख अब्दुल्ला को फिर जेल में डाल दिया गया। जेल में रहते हुए ही वह स्टेट पीपुल्स कांफ्रेंस के अध्यक्ष चुने गये। सितम्बर, 1946 में प्रधान मंत्री पद ग्रहण करने तथा अंतरिम सरकार बनाने के बाद जवाहर लाल नेहरू ने शेरे-कश्मीर से मिलने के लिए कश्मीर जाने की इच्छा व्यक्त की। महाराजा उन्हें कश्मीर में आने की अनुमति देने के लिए तैयार नहीं थे। यदि जवाहर लाल ने वहां जाने की जिद की और महाराजा ने उन्हें जेल में बंद कर दिया तो इस बात की आशंका थी कि गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो सकती है। माउंटबेटन और गांधी जी चिंतित थे। गांधी जी ने जवाहर लाल के स्थान पर कश्मीर जाने का निर्णय लिया। माउंटबेटन इन दोनों में से किसी को वहां नहीं जाने देना चाहते थे। परन्तु गांधी जी वहां जाने के लिए दृढ़ संकल्प थे। महाराजा गांधी जी का स्वागत करने के लिए सहमत हो गये।

गांधी जी 1 अगस्त, 1947 को श्रीनगर गये और उनसे जेल में ही मिले। वह शेख के घर गये और उनके परिवारजनों, मित्रों, तथा नेशनल कांफ्रेंस के नेताओं और कार्यकर्ताओं से मिले। वह महाराजा से भी मिले और उन्हें अकेले में बताया कि वह शेख अब्दुल्ला की मदद लें जो उनके और जनता के बीच सेतु का काम कर सकते हैं। वह 3 अगस्त को श्रीनगर से वापस लौट आए।

4

सन् 1947 में सत्ता के हस्तांतरण के समय पाकिस्तान ने कश्मीर के नेताओं को पाकिस्तान में शामिल होने के लिए फुसलाया। कश्मीरी मूल के कुछ पाकिस्तानी नेता, जो पश्चिमी पंजाब में बस गये थे, श्रीनगर आकर शेख अब्दुल्ला से मिले। उन्हें लाहौर आने तथा एम०ए० जिन्ना से मिलने का निमंत्रण दिया गया लेकिन वे उनकी चाल में नहीं आये। बाद में उन्होंने अपनी आत्मकथा में इस बात का उल्लेख किया। उन्होंने कहा है कि अगर वह वहां चले जाते तो उन्हें पकड़ कर जेल में डाल दिया जाता और उनके नाम से यह घोषणा जारी कर दी जाती कि कश्मीर पाकिस्तान में मिल गया है।

इसके बाद पाकिस्तान सरकार ने बल का प्रयोग करने का निर्णय किया और सीमा पार से सशस्त्र कबायलियों को कश्मीर में भेजा। महाराजा ने घबरा कर भारत से सहायता मांगी। लेकिन इसके लिए आवश्यक था कि कश्मीर का भारत संघ में विलय हो जाये और इसीलिए महाराजा विलय-पत्र पर हस्ताक्षर करने को राजी हो गए।

जब प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू गांधी जी से इस बारे में सलाह लेने आए तब मैं वहां उपस्थित थी। गांधी जी ने उनसे पूछा कि क्या कश्मीर के लोग भी कश्मीर के भारत संघ में विलय के लिए सहमत हैं और गांधी जी ने तब कहा कि भारत को इस मामले में हस्तक्षेप करना चाहिए। नेहरू ने कहा कि नेशनल कांफ्रेंस और इसके नेता शेख अब्दुल्ला ने भी भारत से मदद का अनुरोध किया है तथा उन्होंने ऐसी मदद प्राप्त करने के लिए कश्मीर का भारत में विलय स्वीकार कर लिया है। गांधी जी अहिंसा में विश्वास करते थे। उन्होंने नेहरू से कहा कि "आप मेरे सोचने का तरीका जानते हो। परन्तु आपका तरीका वह नहीं है। सरकार के प्रधान मंत्री होने के नाते आपको जम्मू और कश्मीर को आवश्यक मदद भेजनी चाहिए।" 27 अक्तूबर 1947 को महाराजा ने "विलय-पत्र" पर हस्ताक्षर किये तथा उसी दिन भारतीय सेना की टुकड़ियों को विमान द्वारा श्रीनगर भेज दिया गया।

श्रीनगर की ओर बढ़ते हुए हमलावर शहरों और कस्बों को तहस-नहस कर रहे थे। बारामुल्ला, जो एक खुशहाल शहर था, बरबादी का शिकार हो गया। हमलावरों ने पुरुषों की हत्या कर दी और अनेक महिलाओं ने अपनी आबरू बचाने के लिये आत्महत्या कर ली। हमलावर घाटी की समृद्धि को देखकर दंग रहे गये और उन्होंने अंधाधुंध लूट-पाट की और लोगों को प्रताड़ित किया। मार्ग में खान-पान और एय्याशी में अधिक समय गंवाया। जिसके कारण उन्हें श्रीनगर पहुंचने में विलम्ब हो गया। इस प्रकार भारतीय सेना को श्रीनगर हवाई अड्डे पर पहुंचने का मौका मिल गया।

शेख और उनकी नेशनल कांफ्रेंस के रजाकारों ने हमलावरों का विरोध किया और भारतीय सेना की मदद की कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने के लिए उसके द्वारा बल

प्रयोग के विरुद्ध कश्मीरियों ने विद्रोह कर दिया। वे राजा के शासन से मुक्त होने के इच्छुक थे और अब जब उनकी यह इच्छा पूरा होने वाली थी तब उनकी यह इच्छा बिल्कुल नहीं थी कि वे पाकिस्तान तथा वहां के आक्रामक पंजाबी मुसलमानों की दासता में जायें। नेहरू और गांधी जी द्वारा अपनाये गये नैतिक मूल्यों और आदर्शों को उन्होंने कहीं अधिक अच्छा माना। भारतीय थल सेना तथा वायु सेना ने आक्रमणकारियों को वापस पाकिस्तान की ओर खदेड़कर कश्मीर भूमि को इनसे मुक्त करा दिया। ज़नरल थिमैया ने मुझे कई वर्ष के बाद यह बताया था कि उन्हें यदि केवल 48 घंटे का समय और दे दिया जाता तो सभी आक्रमणकारियों को अंतर्राष्ट्रीय सीमा से परे तक खदेड़ दिया जाता। परन्तु दुर्भाग्य से लार्ड माउंटबेटन, नेहरू को यह बात मनाने में सफल हो गये कि इस विवाद को संयुक्त राष्ट्र संघ के पास भेज दिया जाये। सेना अथवा कश्मीर के नेताओं से बिना परामर्श किये नेहरू ने आवेश में आकर तत्काल युद्ध विराम का आदेश दे दिया। भारतीय सेना को कुछ ऐसे स्थानों से भी हटना पड़ा जिन पर उन्होंने घमासान लड़ाई और भारी क्षति के बाद कब्जा किया था। पटियाला के महाराजा ने भी इस बात की पुष्टि की थी जब सातवें दशक में उनसे मेरी बातचीत हुई थी।

5

महाराजा, उनके प्रधान मंत्री और उनके परिवार के सदस्य भागकर जम्मू चले गये थे। भारत सरकार ने महाराजा को यह सलाह दी कि वह अपना शासनाधिकार अपने उत्तराधिकारी कर्ण सिंह को सौंप दें तथा राज्य छोड़कर चले जायें। 5 मार्च, 1948 को शेख अब्दुल्ला प्रधान मंत्री बने तथा उन्होंने अपना नया मंत्रिमंडल बनाया, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों को बराबर-बराबर संख्या में शामिल किया गया था।

नई सरकार ने भूमि सुधार, शिक्षा प्रसार, पर्यटन, उद्योग और चिकित्सा सुविधाओं के क्षेत्र में काफी काम किया। भारत सरकार ने भी वित्तीय सहायता उदारतापूर्वक दी। परन्तु, दुर्भाग्य से प्रशासन में भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद बढ़ता गया।

कश्मीर के लिए एक नया संविधान तैयार करने हेतु एक पृथक संविधान सभा गठित की गई। भारत के संविधान के विशेष अनुच्छेद 370 के द्वारा भारत में कश्मीर को एक सम्मानजनक स्थान देने का आवासन दिया गया। राज्य के संविधान में यह प्रावधान किया गया कि राज्य में एक सदर-ए-रियासत (गवर्नर) होगा जो राज्य के विधायकों द्वारा पांच वर्ष के कार्यकाल के लिए चुना जायेगा और जो राज्य के प्रधान मंत्री की सलाह के अनुसार कार्य करेगा। 17 नवम्बर, 1952 को कर्ण सिंह को सदर-ए-रियासत की शपथ दिलाई गई। वह इस पद पर लगातार 20 वर्ष तक आसीन रहे।

नेशनल कांफ्रेंस का सर्वोच्च नेता तथा जम्मू और कश्मीर राज्य के प्रधान मंत्री होने के नाते शेख अब्दुल्ला का वहां एक अहम स्थान बन गया था बाद में वह सभी प्रकार के

लोगों के साथ मेल जोल बढ़ाते गये, जिनमें से कुछ लोग भारत सरकार की नजर में संदिग्ध व्यक्ति थे। भारत सरकार की चिंता शेख अब्दुल्ला की उस भूमिका के प्रति बढ़ती गई जो वह निभाना चाहते थे और जो उत्तरोत्तर अधिक अनिश्चित होती जा रही थी। कश्मीर की अपनी संविधान सभा थी जिसने कश्मीर का संविधान तैयार किया था। कश्मीर ने अपने ध्वज के साथ-साथ राष्ट्रीय ध्वज को भी अपनाया, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के अंतर्गत इसे विशेष दर्जा प्राप्त हुआ और इस राज्य के लिए प्रधान मंत्री की व्यवस्था की गयी। ऐसी रिपोर्टें भी मिली कि शेख अब्दुल्ला जिनसे कश्मीर और भारत के बीच संबंध मजबूत बनाने की आशा की गई थी, खुले आम यह मांग करने लगे कि कश्मीर को स्विट्जरलैंड की तरह एक स्वायत्तशासी राज्य का दर्जा दिया जाये उसे सवतंत्र राज्य बनाया जाये तथा इस संबंध में संयुक्त राष्टर द्वारा गारन्टी दी जाये। इससे देश के नेताओं को चिन्ता होना स्वाभाविक था।

इससे नेशनल कांफ्रेंस में, विशेष रूप से शेख अब्दुल्ला के उन पुराने सहयोगियों में रोष फैल गया, जिन्होंने शेख के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया तथा नये कश्मीर को ऐसा स्वरूप देने की योजना बनाई थी जो धर्म-निरपेक्ष और समाजवादी हो तथा जो भारत के साथ पूर्ण रूप से मिला हो। बक्शी गुलाम मोहम्मद, जी० एम० सादिक, सैयद मीर कासिम और डी० पी० धर जैसे नेताओं को भी प्रमाण मिलने पर यह संदेह होने लगा कि शेख अब्दुल्ला कहीं कश्मीर को एक स्वतंत्र राज्य घोषित करके स्वयं उसका शासक न बन जाये और एक नया राजवंश स्थापित न कर ले। वे चाहते थे कि इस बारे में नेहरू कुछ करें।

6

शेख अब्दुल्ला के विरुद्ध कार्यवाही की गई तथा 9 अगस्त, 1953 को बक्शी गुलाम मोहम्मद के परामर्श पर सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह ने उन्हें प्रधान मंत्री पद से हटा दिया और जेल भेज दिया। बक्शी गुलाम मोहम्मद ने 8 अगस्त, 1953 की अर्द्धरात्रि को प्रधान मंत्री का पदभार ग्रहण किया। नेहरू ने शेख को वर्ष 1958 में जेल से रिहा कराया। उनकी रिहाई पर उनका भव्य स्वागत किया गया। आतिश-ए चिनार में उन्होंने लिखा है कि जम्मू और कश्मीर के सत्तारूढ़ व्यक्ति उनकी रिहाई से भयभीत थे। साढ़े तीन महीने के पश्चात् आपराधिक षडयंत्र के आरोप में शेख को पुनः जेल भेज दिया गया। यह षडयंत्र का मामला 6 वर्षों तक चलता रहा और अंततः इस मामले को वापस लेना पड़ा। 8 अप्रैल, 1964 को शेख को पुनः रिहा किया गया। उन्होंने नेहरू से मुलाकात की और उपमहाद्वीप में शांति बनाए रखने के लिए पाकिस्तान के साथ बातचीत करने का अनुरोध किया। उस समय नेहरू का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उन्होंने सुझाव दिया कि शेख अयूब खां को दिल्ली आने को कहें, क्योंकि नेहरू का स्वास्थ्य खराब होने के कारण वह

पाकिस्तान नहीं जा सकते हैं। शेख अब्दुल्ला रावलपिन्डी गये, जहां उनका भव्य स्वागत किया गया। अयूब खां दिल्ली आने के लिए सहमत हो गये। शेख वहीं थे कि उन्हें नेहरू की मृत्यु का समाचार मिला। वह शोक में डूब गये और अपने मित्र को अन्तिम श्रद्धांजलि देने के लिए दिल्ली लौट आये।

तत्पश्चात् वे हज की यात्रा पर चले गये और उन्होंने लन्दन और पैरिस सहित कुछ अन्य देशों की भी यात्रा की। सभी जगह उनका स्वागत किया गया। उनके कुछ भाषणों के प्रकाशित होने पर उन्हें फिर वर्ष 1965 में भारत वापस आते ही 6 वर्षों के लिए नजरबंद कर दिया गया। भारत सरकार ने देश से बाहर उनकी गतिविधियों को राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल समझा। शेख के अनुसार इसका कारण यह था कि उन देशों में भारतीय दूतावासों के अधिकारियों ने उनके भाषणों की गलत जानकारी दी थी।

2 जनवरी, 1968 को शेख रिहा कर दिये गये। उस दिन ईद थी। उस दिन ईदगाह में अपने भाषण में उन्होंने कहा कि मेरे जीवन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि आम आदमी बिना भय के, शांति और स्वच्छंदतापूर्वक रहें। इसके लिए आवश्यक है कि भारत और पाकिस्तान के बीच घृणा और सन्देह की भावना दूर हो।

अपनी रिहाई के बाद शेख ने जम्मू में एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें राज्य के विभिन्न भागों से प्रतिनिधि आये। सम्मेलन को जयप्रकाश नारायण ने भी सम्बोधित किया। उन्होंने अपने भाषण में शेख अब्दुल्ला और खान अब्दुल्ला गफ्फार खां को धर्मनिरपेक्षवाद का प्रतीक बताया। उन्होंने दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कश्मीर के लोगों को सलाह दी कि वे अपनी समस्याओं का समाधान भारत में रहकर ही निकालें। उन्होंने कहा कि सभी भारतीय उनकी आकांक्षाओं का समर्थन करेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि शेख की सहमति के बिना कश्मीर की समस्या का कोई समाधान नहीं हो सकता।

7

इस बीच पाकिस्तान में स्थिति खराब हो गयी। पूर्वी बंगाल में युद्ध छिड़ गया, जिसके परिणामस्वरूप पूर्वी बंगाल पाकिस्तान से अलग हो गया। पूर्वी बंगाल (बंगलादेश) में भारतीय सेनाओं ने पाकिस्तान को पराजित कर दिया और कश्मीर में भी भारतीय सेनाओं ने आजाद कश्मीर के कुछ भागों पर कब्जा कर लिया। कश्मीर में असंतोष बढ़ रहा था जिससे भारत सरकार चिंतित थी।

शेख ने अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान से बीमारी की हालत में श्रीमती इंदिरा गांधी को पत्र लिखा। वर्ष 1975 के प्रारम्भ में कश्मीर समझौता होने से पहले उनके बीच अनेक बैठकें हुई। शेख ने जम्मू और कश्मीर में नये चुनाव कराने का सुझाव दिया। श्रीमती गांधी की राय अशांत और विक्षुब्ध वातावरण में चुनाव कराने की इच्छा नहीं थी।

श्रीमती गांधी ने सुझाव दिया कि शेख, मीर कासिम से मुख्यमंत्री का पद ग्रहण करें, जो उस समय कांग्रेस की सरकार में मुख्यमंत्री थे। तदनुसार, 24 फरवरी, 1975 को, शेख अब्दुल्ला को सर्वसम्मति से कांग्रेस संसदीय दल का नेता चुना गया, जबकि वह कांग्रेस के सदस्य नहीं थे। उनके नेतृत्व में नये मंत्रिमंडल ने प्रशासन में कार्य-कुशलता और ईमानदारी लाने की पूरी कोशिश की।

25 जून, 1975 को श्रीमती गांधी ने भारत में आपात स्थिति लागू कर दी। शेख राजनीतिक नजरबंदी से सहमत नहीं थे और राज्य में समाचारपत्रों के सैंसर किए जाने के विरोधी थे।

जुलाई 1977 में कांग्रेस की पराजय और जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद जम्मू और कश्मीर में नये चुनाव कराये गये। अपने कमजोर स्वास्थ्य और चुनाव प्रचार के लिए कहीं न जा सकने के बावजूद, शेख और उनके दल को भारी विजय मिली। उनकी पत्नी बेगम अब्दुल्ला और उनके पुत्र डा० फारूख अब्दुल्ला ने अच्छा काम किया। 9 जुलाई, 1977 को शेख ने अन्तिम बार मुख्य मंत्री का पदभार संभाला किन्तु दुःख की बात है कि वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहे।

वर्ष 1984 में प्रकाशित अपनी आत्मकथा—"आतिश-ए-चिनार" में शेख ने कश्मीर की संविधान सभा के प्रारम्भ में दिये गये अपने एक भाषण का उल्लेख किया है। इस भाषण में उन्होंने कहा है कि उनके सामने तीन विकल्प हैं अर्थात् (1) भारत में विलय (2) पाकिस्तान में विलय (3) स्वतंत्रता। राज्य के लिए सही रास्ता भारत के साथ विलय स्वीकार करना ही है। शेख ने अपने कुछ भाषणों में पहले ही घोषणा कर दी थी कि कश्मीर में कराये गये चुनाव ही यह साबित करने के लिए काफी हैं कि कश्मीर के लोग अपनी स्वेच्छा से भारत में मिल गये हैं। उन्होंने अपनी आत्मकथा में आगे कहा है कि इन 30 वर्षों के दौरान उन्होंने और कश्मीर की जनता ने काफी कष्ट उठाये हैं, किन्तु अब मुझे विश्वास है कि भारत के साथ विलय की राय सही है।

शेख अब्दुल्ला ने अपनी आत्मकथा में वर्ष 1953 में अपनी गिरफ्तारी के संबंध में यह कहा था कि वह एक षडयंत्र के शिकार हुए थे। यह सम्भव था कि यदि उन्हें बन्दी न बनाया जाता तो उनके और भारत सरकार के बीच जो गलतफहमी पैदा हुई थी, वह पहले ही दूर की जा सकती थी और कश्मीरियों के अलगाव को काफी हद तक रोका जा सकता था। निश्चित रूप से, उन्हें बन्दी बनाने से इतिहास बदल गया। किन्तु वह एक उदार व्यक्ति थे और बीते दिनों को भूल जाना चाहते थे। उनके दुबारा सत्तारूढ़ होने से कश्मीर और भारत संघ के बीच संबंध मजबूत करने के लिए उन्हें और भारत को नया अवसर मिला। किन्तु 8 सितम्बर, 1982 को उनकी मृत्यु के साथ ही उनका कार्य अधूरा रह गया।

दुरूह और विवादास्पद व्यक्तित्व के बावजूद शेख अब्दुल्ला एक महान भारतीय थे। उनकी देशभक्ति और धर्मनिरपेक्षवाद पर सन्देह नहीं किया जा सकता है।

2

शेख अब्दुल्ला का भारतीय राजनीति में स्थान

प्रो० रशीदुद्दीन खां*

स्वतंत्रता संग्राम के आलोक में जगमगाते सितारों की पीढ़ी के लगभग सभी सितारे अस्त हो चुके हैं। और यह शोचनीय स्थिति है कि युगपुरुष राजनीतिज्ञों—वास्तव में सभी क्षेत्रों में महान पुरुषों का युग समाप्त प्रायः है, अतः अब ऐसा प्रतीत होता है कि "भ्रष्टाचार" का सर्वत्र बोलबाला है, तथा वस्तुतः विकास की इस प्रक्रिया में सज्जन पुरुष को तो व्यवस्था के व्यर्थ और कालातीत अंग के रूप में माना जाता है।

शेख मुहम्मद अब्दुल्ला, जिनकी 1982 में मृत्यु पर कश्मीर की घाटी के लाखों लोगों और देश भर के अन्य लाखों लोगों ने अत्यंत भाव विव्हल होकर शोक मनाया था, अपने जीवन काल में एक ऐसे युग के प्रतीक थे जिसमें देशभक्ति की भावना ने नर-नारियों को आदर्शवाद, त्याग और सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति के लक्ष्य की ओर आकर्षित किया और समग्र सामूहिक व्यक्तित्व के रूप में विकास की ओर उन्मुख किया। प्रत्येक युग में पुरुष और महिलाएं जन्म लेती हैं और पुरुष और महिलाएं युग का निर्माण करते हैं। स्वतंत्रता संग्राम के माध्यम से देशभक्ति से ओत-प्रोत विशिष्ट वर्ग का जो वीरोचित स्वरूप बना था, वह अब लुप्त हो चुका है। शेख साहिब, जो हमारे देश के उन अंतिम महान नेताओं में से एक थे, जिनका जन्म हमारी राष्ट्रीय राजनीति के आलोक में हुआ था और उन जैसे महान नेताओं के निधन से ऐसी अपूरणीय क्षति हुई है जो हमें इकबाल की निम्न पंक्तियों की याद दिलाती है:—

"जो वादा कश थे पुराने वो उठाये जाते हैं
कहीं से आबे-बाके-दावाम ला साकी।"

(ऐ साकी कहीं से उन लोगों के लिये उन बुजुर्गों के लिए जीवनामृत ला जो एक-एक करके कूच कर चुके हैं)

---

*निदेशक, एकादमी आफ थर्ड वर्ल्ड स्टडीज तथा भूतपूर्व संसद सदस्य।

शेख अब्दुल्ला जिस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में दबंग व्यक्ति थे, उसी प्रकार शारीरिक रूप से भी वे लम्बे, हृष्ट-पुष्ट और आकर्षक व्यक्ति थे। यदि आकर्षक व्यक्तित्व की बात की जाए, तो शेख साहिब को कम से कम दो अग्रगामी भूमिकाओं के लिए तो लम्बे समय तक याद किया जाएगा, जो उन्होंने ब्रिटिश राज के अन्तिम चरण की समाप्ति के परिवर्ती समय और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के प्रारम्भिक दशकों के दौरान देश की खुली राजनीति में निभाई। उन्होंने अपने कश्मीर के अपने लोगों को, जिन्हें शताब्दियों से उनके अधिकारों से वंचित रख कर, उनकी उपेक्षा करके और उन्हें बाहरी व्यक्ति समझकर अशक्त और पिछड़ा हुआ बना दिया गया था, गौरव और गर्व की भावना से ओत-प्रोत किया। और वह राष्ट्रीय राजनीति के उस चौराहे पर, जहां धर्मनिरपेक्ष और समानतावादी ताकतें साम्प्रदायिकता, सामंतवाद और सामाजिक असमानता के विरुद्ध संघर्ष कर रही थी, लगभग पचास वर्ष तक एक महापुरूष की भांति खड़े रहे।

प्रायः इस बात से बिल्कुल भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि एक हिन्दू बहुल देश में, जहां भारतीय राष्ट्रवाद के प्रमाण के रूप में हिन्दू साम्प्रदायिकता के अनेक पहलुओं की छाप मिलती है, एक अल्पसंख्यक समुदाय के जन्मे व्यक्ति के लिए धर्मनिरपेक्षता से प्रतिबद्ध रहने और उसकी रक्षा के लिए संघर्ष करने हेतु साधारण साहस और प्रारम्भिक सूझ-बूझ से अधिक बहुत कुछ चाहिए। हिन्दू दर्शन की व्यापकता जीवन की स्वयं सिद्धि के स्वतः प्रमाण के रूप में सत्य के अनेक मार्ग प्रशस्त करती है, जो न केवल सहिष्णुता को बढ़ावा देती है बल्कि धर्मनिरपेक्षता के स्वरूप को भी बनाए रखती है। दूसरी ओर, मुसलमानों द्वारा विशेषरूप से रूढ़िवादी धर्मनिरपेक्षता के पालन का मतलब है रूढ़िवादी सिद्धान्तों से हटना और उन्हें सभी इस्लामी देशों के दृष्टिकोण के अनुरूप आचरण करना होता है। मुसलमान होना और उस पर धर्मनिरपेक्ष होना, रचनात्मक प्रयास में एक अभिनव परिवर्तन और साधना है। फिर भी, यह एक ऐसा उपाय है जिससे राजनीति में उनकी गहरी पैठ बनती है, और बहुधर्मी, बहु-जातीय राष्ट्रवाद में उनका स्थायी विश्वास कायम होता है। यह इसी साधना का परिणाम है कि यहां अनेक अग्रणी मुस्लिम नेता उत्पन्न हुए, जिन्होंने अखंड राष्ट्र की आजादी के लिए अपने गैर-मुस्लिम हम वतनों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया। और इन दिग्गज व्यक्तियों में बादशाह खान (खान अब्दुल गफ्फार खां) और शेख अब्दुल्ला का नाम सबसे ऊपर आता है क्योंकि मुस्लिम बहुल क्षेत्रों के, जहां मुस्लिम अलगाववाद की राजनीति चरम बिन्दु पर थी और मुस्लिम सम्प्रदाय से संबंध रखना उस समय लाभकारी होता था, नेता होते हुए भी वे दृढ़ विश्वास और व्यापक राष्ट्रीय हित में धर्म निरपेक्षता पर अटल रहे। शेख साहब राष्ट्र के धर्म-निरपेक्ष आचार के प्रतीक ही नहीं थे, अपितु उन्होंने इसके महत्व का बड़े उत्साह और सामंजस्य के साथ बखान किया जोकि बहुत ही कम देखने को मिलता है। केवल एक

विरल साहसी और दृढ़ विश्वास वाला नेता ही अपने लोगों से इस ढंग से बात कर सकता था, जैसाकि उन्होंने उस संकटपूर्ण घड़ी पर कहा था जब कश्मीर का भविष्य अधर में था, उन्होंने कहा था कि:

"मैं काश्मीर के मुसलमानों को संबोधित कर रहा हूं मैं उन्हें बता रहा हूं कि भाग्य ने उन्हें अपने इतिहास और जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय लेने के लिए एक अवसर दिया है। आज उन्हें अपनी इच्छानुसार काम करने से रोकने के लिए सेना को कोई भी जवान और महाराजा का कोई भी सिपाही नहीं है। आज पाकिस्तान के हमलावर श्रीनगर से कुछ ही मील दूर हैं। वे इस्लाम का नारा लगा रहे हैं। यह आप पर निर्भर करता है कि आप उनके साथ रहोंगे या मेरे साथ। यदि आप मेरे साथ रहने के इच्छुक हो तो उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि आपको सदा इस सिद्धान्त के अनुसार जीवन बिताना होगा कि हिन्दु, मुसलमान और सिख भाई-भाई हैं। यदि यह काफिर की भाषा है तो आपको मेरे विरुद्ध तलवार उठा लेनी चाहिए। यदि आप काफिरों के घरों पर छापा मारना अथवा वहां बलात्कार करना चाहते हो तो मैं ऐसा सबसे पहला काफिर हूं जिसके घर अथवा परिवार से आपको यह शुरू करना चाहिए।"

यह खेद की बात है कि जीवन के उतार-चढ़ाव से उन्हें अपने सपनों को तथा घाटी के लोगों को प्रभावित करने वाले कुछ नारों को उत्साहपूर्वक जीवन की वास्तविकता में बदलने का बहुत ही कम समय मिला। इतिहास की घटनाएं भी सदैव इतिहास निर्माताओं के संदर्शों और दूरदर्शिताओं के अनुरूप नहीं होती हैं। सिद्धान्त और व्यवहार तथा आदर्श और इसकी अनुभूति के बीच अपरिहार्य भिन्नता है। कश्मीर की स्थिति के संदर्भ में ये जटिलाताएं देश के अन्य भागों की अपेक्षा कुछ अधिक तथा भिन्न थी।

ब्रिटिश भारत के दो प्रातों को दो नये राष्ट्रों, भारत और पाकिस्तान के रूप में स्थापित करने के लिए अन्यथा आपत्तिजनक "दो राष्ट्रों के सिद्धान्त" (मुस्लिम लीग के राजनीतिक प्रक्षेपण का मूल सिद्धान्त जिसमें हिन्दू और मुसलमानों को दो पृथक और समानान्तर एकरूप, जो एक दूसरे के विरोधी है, के रूप में वर्गीकृत करने की मांग की गई) से उस समय भ्रम पैदा हुआ जब इस सिद्धांत को जम्मू और कश्मीर के राजसी राज्य की विचित्र स्थिति को देखते हुए भी इसी पर लागू किया गया और जिसकी प्रबल मुस्लिम जनता शेख अब्दुल्ला और नेशनल काफ्रेंस के नेतृत्व में ब्रिटिश साम्राज्यवाद, हिन्दू महाराजा की अध्यक्षता वाले डोगरा सामन्तवाद तथा मुस्लिम लीग द्वारा प्रचारित मुस्लिम साम्प्रदायवाद के विरुद्ध तितरफा संघर्ष कर रही थी। राजसी राज्यों की तुलना में ब्रिटिश प्रभुता के पतन की धारणा में आवेष्टित संदिग्धता से ऐसी भ्रामक स्थिति उत्पन्न हुई जिसमें महाराजा हरि सिंह ने विशिष्ट उभयभाव से उस समय भारत और पाकिस्तान दोनों राष्ट्रों के साथ एक विराम समझौते पर हस्ताक्षर किये, जब शेख अब्दुल्ला नजरबंद थे और नेशनल कांफ्रेंस

पर कश्मीर छोड़ो आन्दोलन के परिणामस्वरूप प्रतिबंध लगा दिया गया था और इस आन्दोलन का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जवाहरलाल नेहरू ने खुला समर्थन किया था, जब जोधपुर के महाराजा ने, पाकिस्तान के साथ जोधपुर के अधिमिलन से पहले ही, केवल पाकिस्तान के साथ विराम समझौते पर हस्ताक्षर कर लिये थे तो यह कहा गया था कि कश्मीर के महाराज भी तदनुसार अपने पद और विशेषाधिकार के बारे में कुछ आश्वासनों के बदले में पाकिस्तान के साथ समझौता करने से नहीं कतरायेंगे। स्थायी पाकिस्तानी सेना अधिकारियों के समर्थन से पाकिस्तानी छापामारों द्वारा घाटी में व्यापक घुसपैठ से महाराजा के पास कोई भी विकल्प नहीं रह गया था। महाराजा द्वारा भारत में अधिमिलन की कार्यवाही, उनके दृढ़-विश्वास, देशभक्ति और दूरदृष्टि की अपेक्षा पाकिस्तान द्वारा युद्ध का रुख प्रकट करने के कारण एक विवशता की कार्यवाही थी। इसके विपरीत, शेख साहिब ने लगातार यह रुख अपनाया कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद, डोगरा सांमतवादी उत्पीड़न और राष्ट्रीय मुख्यधारा से मुस्लिम अलगाववाद जैसे तीन मुख्य और अंतर-संबंधित दृष्टिकोण ही जम्मू और कश्मीर के लोगों के शत्रु हैं।

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में विशेष रूप से आल इंडिया स्टेट्स पीपल्स कांफ्रेंस के अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू के उत्तराधिकारी और संविधान सभा के एक सदस्य एवं एक राष्ट्रीय नेता के रूप में भारत के संघीय प्रजातांत्रिक ढांचे के निर्माण में उनकी भूमिका चाहे जितनी छोटी और आलोचनात्मक रही हो परन्तु जैसे-जैसे हम इतिहास की ओर पलटकर देखते हैं जो उन्हें कार्यकलापों और वाक्पटुता में अवसरिक कटुता से घिरे कुछ विवादों से अलग है तो इस भूमिका का निसंदेह कुछ अलग और सुस्पष्ट ढंग से सही अर्थों में मूल्यांकन किया जाएगा। वह बहुत ही सजीव और अहंभाव के व्यक्ति थे परन्तु कई ऐसे भी अवसर थे जब उन्होंने गलत राह पर चलने वाले महत्वपूर्ण लोगों को फटकारा और अपने व्यवहार तथा कार्य की प्रतिक्रियाओं का सामना किया।

सार्वजनिक कार्य और जल कल्याण से परिपूर्ण ऐसे जीवन में, मतभेद, विवाद और राजनीतिक मतैक्य न होने जैसी बात अनिवार्य थी। वास्तव में, कुछ ही नेताओं को शेख साहब की तरह स्वतंत्रता-प्राप्त भारत में इतने लम्बे समय तक सक्रिय राजनीति के क्षेत्र से अलग होकर कैद रहना पड़ा अर्थात् "कारावास में राजनीतिक एकाकीपन" बिताना पड़ा और यह भी बिना द्वेष की भावना से। जवाहरलाल नेहरू के प्रति उनकी गहरी निष्ठा (....."जवाहरलाल नेहरू से अधिक किसी और ने मुझे प्रेरित नहीं किया"....) और इंदिरा गांधी के प्रति स्नेह भी (....."बेचारी पर बड़ी जिम्मेदारियां हैं.....") उनके साथ राजनीतिक मतभेदों को जानने के बावजूद बना रहा।

जब मैंने उन्हें पिछली घटनाओं का चिंतन करने तथा संघीय निर्माण के समक्ष आ रही

चुनौतियों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए कहा तो यह बात वर्ष 1978 में स्पष्ट होकर सामने आई। पिछले असफल वर्षों का स्मरण करने के बावजूद वह सभी कटुताओं से एकदम मुक्त दिखाई दिए। वास्तव में उनका ध्यान वर्तमान समस्याओं और भविष्य की सम्भावनाओं पर केन्द्रित था। न तो उम्र न ही परिस्थितियों के कारण "हिन्दू-मुस्लिम-सिख भाईचारा" तथा प्रजातांत्रिक-गणतंत्रवाद की राज्यव्यवस्था (उनके ही मुहावरे की व्याख्या करने पर); मूल भूमि सुधार (—नेशनल कान्फ्रेंस के नया कश्मीर कार्यक्रम में भारत में भूमि सुधारों के कुछ मूल उद्देश्य और पहलू शामिल थे) तथा सामाजिक और आर्थिक असमर्थता एवं अन्याय; विदेशी मामलों तथा विश्व शांति में भारत की सक्रिय भूमिका जैसे मूल राष्ट्रीय लक्ष्यों के प्रति उनकी वचनबद्धता कभी कमजोर नहीं हुई। अधिक निकट से जांच करने पर पता चलता है कि ऐसे नेताओं की संख्या अधिक नहीं है। जिनका जीवन-उद्देश्य तथा विश्व-दृष्टिकोण शेख अब्दुल्ला की तरह हमारी राष्ट्रीय सहमति के प्रमुख आधारों को आपस में इस प्रकार दृढ़तापूर्वक मिलाने का रहा हो।

किन्तु राजनीतिक क्षेत्र से भिन्न, निःसंदेह वह एक शालीन, भावुक तथा सुसंस्कृत व्यक्ति थे, एक ऐसा व्यक्ति थे, जो गुलाब को सूंघकर उसकी खुशबू से आनन्दित होता है, सौन्दर्य के सभी रूपों की प्रशंसा करता है, खाने-पीने का शौकीन है तथा स्वेच्छापूर्वक पीड़ा सहन करता है, कविता की पुस्तक रस लेकर पढ़ता है तथा किसी मुशायरा में उत्सुकतापूर्वक भाग लेता है। उर्दू शायरी की गंभीर बारीकियों को वे अच्छी तरह समझते थे। मुझे याद है, उन्होंने मुझे कहा था कि इन्दिरा गांधी-अब्दुल्ला समझौते के अवसर पर राज्य सभा में दिए गए मेरे भाषण में उन्होंने जो सबसे अधिक पसंद किया, वह मीर तकी मीर का वह शेर था जिसे मैंने उनके विचारार्थ एक संदेश के रूप में उद्धृत किया था, जब कश्मीर की राजनीति की नई जटिलताओं तथा केन्द्र-राज्य संबंधों पर विचार किया जा रहा था। वह शेर यह है:

लो सांस भी आहिस्ता कि नाजुक है बहुत काम,
अफाक की इस कारगहे शीशा-गरी का,
(आराम से सांस लो, कहीं ऐसा न हो कि
तुम इस भंगुर संसार के नाजुक
कांच के कारखाने को क्षति पहुंचा दो)

3

शेख अब्दुल्ला : प्रतिभावान नेता

बेगम शेख अब्दुल्ला*

मेरे पति स्व० शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की 85वीं वर्षगांठ पर हम उन्हें उनकी याद में जो सबसे बड़ी श्रद्धांजलि दे सकते हैं वह यह है कि उन्होंने 50 वर्षों से भी अधिक समय तक कश्मीर के गरीब और उपेक्षित लोगों की जो निस्वार्थ सेवा की थी, हम उसे याद करें। शेख साहिब राष्ट्रीय स्तर के नेता थे। लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के निर्वाहन के लिए उनका योगदान आज इतिहास का चमत्कार बन गया है। उनका राजनीतिक जीवन अधिकांशतः देश के आधुनिक राजनीतिक इतिहास से मेल खाता था। जहां जम्मू तथा कश्मीर में वे जन आन्दोलन के मुख्य प्रेरणा स्रोत थे, वहीं वे महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में चलाए गए राष्ट्रीय आन्दोलन की अग्रिम पंक्ति में थे।

वे देश के महान सपूत थे। वस्तुतः शेख साहिब कश्मीर की मिली-जुली संस्कृति के प्रतीक थे। उनके व्यक्तित्व में मानवता और भाईचारे की अतीत की हमारी परम्परा और संस्कृति का समावेश था। वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक के आरंभ में शेख साहिब सार्वजनिक जीवन में आए। उस समय जम्मू और कश्मीर राज्य में सामंतीय और तानाशाही शासन था। राज्य में गरीबी, अज्ञान और उपेक्षा का वातावरण था। साक्षरता निम्नतम स्तर पर थी। उस समय उचित स्वास्थ्य उपचार का लोगों को ज्ञान नहीं था। लोगों से मूक जानवरों की तरह व्यवहार किया जाता था। लोगों की दयनीय स्थिति और उनके प्रति उपेक्षा के भाव से विचलित होकर, शेख साहिब ने "आल जम्मू एण्ड कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस" के झंडे के नीचे लोगों को संगठित किया और स्वशासन के लिए आन्दोलन आरम्भ किया। शेख और लोगों द्वारा तानाशाही शासन के खिलाफ आन्दोलन के दौरान, मुकदमों और तकलीफों से हुई पीड़ा, अपने आप में एक वीरगाथा है। तथापि,

---

*भूतपूर्व संसद सदस्य।

लोगों को राजनैतिक स्वतंत्रता 1947 में प्राप्त हो गई थी और मार्च, 1948 में शेख साहिब के नेतृत्व में पहली लोकप्रिय सरकार ने कार्यभार संभाला। सरकार ने पूरी ईमानदारी से नेशनल कांफ्रेंस पार्टी के घोषणा पत्र में उल्लिखित "नया कश्मीर" कार्यक्रम के कार्यान्वयन की दिशा में कार्य शुरू किया। इसमें सभी प्रकार के आर्थिक शोषण को समाप्त करके नई सामाजिक व्यवस्था लाना और राज्य के सभी संस्था में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय दिलाना सम्मिलित था। शेख साहिब के नेतृत्व में राज्य सरकार ने वंशागत शासन और जागीरदारी प्रणाली का अंत किया। बड़ी भूमि सम्पदा निवारण अधिनियम के अन्तर्गत काश्तकारों को भूमि हस्तांतरित की गई।

शेख साहिब ने शताब्दियों से विदेशी शासन के दौरान दलित लोगों की दशा में सुधार किया। इन लोगों में अपनी खोई हुई पहचान और आतमविश्वास को पुनः प्राप्त कराना उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी। राज्य के लोगों को उनके अधिकारों और विशेषाधिकारों के प्रति सचेत कराकर, उन्होंने इनमें नई चेतना पैदा की और इन्हें एक नया जीवन प्रदान किया। गांधी जी ने शेष भारत में भारतीय आत्म-सम्मान के लिए जो कार्य किया, वही कार्य शेख साहिब ने घाटी में कश्मीरी लोगों के लिए किया। इन लोगों के अतीत में मनोवैज्ञानिक क्षति और इसके फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व में आई गिरावट के लिए विशेष उपचार की आवश्यकता थी। इसका उपचार शेख साहिब ने पूरी मेहनत से किया। यदि आज यह राज्य मध्यकालीन अंधकार से आधुनिकता की ओर अग्रसर है, तो यह सब शेख साहिब के प्रयासों का ही फल है।

आज, जब हम स्वर्गीय नेता की याद में श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं, हमें उनकी जन्मशती पर, उन सिद्धान्तों पर चलने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए, जिन पर वे सारी उम्र चलते रहे।

4

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला-स्वतंत्रता सेनानी

रेणुका राय*

शेख, मोहम्मद अब्दुल्ला से मेरी पहली मुलाकात गांधीजी के साथ दिल्ली में हुई थी तथा उनके उच्च प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं गांधीजी के प्रति उनकी पूर्ण निष्ठा से मैं अति प्रभावित हुई थी। वे उन नेताओं में से थे जिन्होंने भारत के विभाजन का डट कर विरोध किया था और जब विभाजन हो गया, तब केवल इन्हीं के कारण कश्मीर भारत का हिस्सा बना रहा, यद्यपि इसका कुछ भाग पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा अपने कब्जे में लिया जा चुका था। उन्होंने तथा नेशनल कांफ्रेंस के अनुयायियों ने एक बहुत बड़ा रुख अख्तियार किया कि कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग बने रहना चाहिए। तथापि संविधान सभा के सदस्य के रूप में उनके द्वारा दी गई सलाह के कारण ही पंडित नेहरू ने संविधान में शामिल एक या दो शर्तों पर अपनी सहमति व्यक्त की थी। शेख मोहम्मद अब्दुल्ला उन व्यक्तियों में से थे जिन्हें "भारत छोड़ो" आन्दोलन के दौरान जेल जाना पड़ा था। वह कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस के नेता थे तथा उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ मिलकर कार्य किया था।

1953 के अंत में जब पंडितजी विदेश गये हुए थे, उन पर पाकिस्तान के साथ सांठ-गांठ करने का सन्देह किया गया और वे एक विवादास्पद व्यक्ति बन गये। उन्हें 1953 में गिरफ्तार किया गया तथा जेल में डाल दिया गया। सन्देह यह किया गया कि उनका इरादा बदल गया था और वे मुख्यतः कश्मीर के उस हिस्से को वापस लाने के लिए चिन्तित थे जिसे पाकिस्तान ने बलपूर्वक कब्जे में ले लिया था। वे आरंभ से ही ऐसा करना चाहते थे, लेकिन यह सन्देह व्यक्त किया गया कि वे इस प्रकार का कार्य करके एक अलग राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। यह भी कहा गया कि वह भारत और पाकिस्तान के बीच एक समझौता करना चाहते थे क्योंकि वह विभाजन के सख्त खिलाफ रहे।

---

*भूतपूर्व संसद सदस्य।

तथापि आजाद कश्मीर के अस्तित्व का विरोध करने के लिए कश्मीर के दौरे पर गये, श्यामा प्रसाद मुखर्जी को गिरफ्तार किए जाने और बाद में वहां जेल में उनकी मौत हो जाने के बाद स्थिति और बिगड़ गई। भारत की स्वतंत्रता के आन्दोलन में अपने भारी योगदान के बावजूद शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को 1964 तक जेल में बन्द रहना पड़ा, यद्यपि उनके कुछ पुराने सहयोगियों ने, जिन्होंने गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उनके साथ मिलकर कार्य किया था, इसे बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण बताया। उन्हें जेल से छोड़ दिया गया क्योंकि उन्होंने सफाई दी कि उनका इरादा कश्मीर के दोनों हिस्सों को मिलाकर एक करना था न कि भारत से इसका संबंध तोड़ना। उनकी ओर से यह कहा गया कि वह भारत से कश्मीर का संबंध-विच्छेद नहीं चाहते थे बल्कि भारत संघ के भीतर वह कश्मीर को उच्च दर्जा दिलाने के इच्छुक थे।

कुछ भी हो, इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने स्वंतत्रता संग्राम के दिनों में एक प्रमुख भूमिका निभाई तथा उनकी नेशनल कांफ्रेंस ने गांधीजी के अहिंसक एवं असहयोग आन्दोलन के दौरान भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ एकजुट होकर कार्य किया।

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला से अन्तिम बार मैं कलकत्ते में राज भवन में मिली जब वे जेल से छूटने के बाद अपनी पत्नी के साथ वहां आए थे। वे एक शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे तथा यद्यपि गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता के पुराने निष्ठावान सेनानी की झलक उनके चेहरे पर विद्यमान थी, फिर भी शायद उनको बाद की कठिन परीक्षा के कारण उनमें काफी परिवर्तन आ गया था। उनकी सर्वोपरि इच्छा थी कि कश्मीर में पाक- अधिकृत हिस्से को मिलाया जाना चाहिए, तथा संविधान में निर्धारित शर्तों का सख्ती से पालन करते हुए भारत के साथ घनिष्ठता बनाई जानी चाहिए। निश्चय ही, स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान वे एक राष्ट्रीय नेता रहे। बाद की अवधि में, उनके विचारों में जो मामूली परिवर्तन आए, यदि उन्हें छोड़ दिया जाए, तो वे हमारे देशवासियों से सम्मानपूर्ण श्रद्धांजलि के पात्र हैं।

संविधान सभा के सदस्य के रूप में मेरी प्रायः उनसे मुलाकात होती रहती थी और मैं आश्वस्त थी कि संविधान में उनका दृढ़ विश्वास था। 26 जनवरी, 1951 को संविधान पर हस्ताक्षर करने वाले प्रमुख व्यक्तियों में शेख मोहम्मद अब्दुल्ला भी शामिल थे।

मुझे आशा है कि शेख मोहम्मद अब्दुल्ला जैसे पुरूष और महिलाओं तथा सरोजनी नायडू सहित अन्य देशभक्तों का, जिन्होंने गांधीजी की अहिंसावादी नीति पर कार्य किया, सम्मान किया जाएगा। निस्संदेह यदि मानवता को कायम रखना है तो उसे युद्ध

के माध्यम से नहीं बल्कि अहिंसात्मक उपायों से ही, जिनसे गांधी जी ने भारत को स्वतंत्रता दिलाई और उसके बाद मार्टिन लूथर किंग अश्वेतों के लिए अधिकार प्राप्त करने में कामयाब रहे थे, कायम रखा जाना चाहिए।

यह नहीं भूलना चाहिए कि जब कभी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं घटीं, शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने भारतीय संविधान के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप में पूरी आस्था जताई और इसके प्रस्तावना का पूरा-पूरा समर्थन किया।

5

शेख अब्दुल्ला—एक श्रद्धांजलि

चौधरी रणबीर सिंह*

शेख अब्दुल्ला एक बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। एक साधारण परिवार में जन्म लेने के पश्चात, वे एक महान व्यक्ति बने और अर्ध-शताब्दी से भी अधिक समय तक जम्मू और कश्मीर के राजनैतिक पटें पर छाए रहे। महाराजा के शासन के प्रति उनके अथक और निरन्तर संघर्ष ने उन्हें राष्ट्रीय स्तर का नेता बना दिया। पंडित नेहरू भी उनकी तरफ आकर्षित हुए और उनका साथ दिया और गिरफ्तार हुए।

शेख अब्दुल्ला हिन्दू-मुसलमान एकता के प्रतीक थे। यहां तक कि पाकिस्तान के निर्माता एम० ए० जिन्ना को भी यह देखकर घोर निराशा हुई कि उन्हें वश में करना बहुत कठिन है। वे धर्मनिरपेक्षता के असाधारण प्रतीक थे। उन्होंने कठिन परिश्रम से हिन्दू-मुसलमान एकता का जो ढांचा तैयार किया था, उसे देश विभाजन की आग भी प्रभावित नहीं कर सकी। यह देखकर आश्चर्य होता है कि पूरे उपमहाद्वीप में यह भावना आज भी गहरे रूप से विद्यमान है। इसका पूरा श्रेय उन्हीं को जाता है।

शेख अब्दुल्ला, मुस्लिम लीग की "दो राष्ट्र" की नीति के कट्टर विरोधी थे और इस मिशन को पक्का करने के लिए, स्वतंत्रता की निर्णायक घड़ी में उन्होंने जम्मू और कश्मीर के लोगों को भारत के साथ रखने का निर्णय किया। एक देशभक्त होने के नाते उन्हें अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तीन मोर्चों अर्थात् महाराजा, ब्रिटिश शासन और पाकिस्तान के निर्माता द्वारा फैलाई गई साम्प्रदायिकता के विरुद्ध लड़ना पड़ा।

शेख अब्दुल्ला एक कर्मठ नेता और योग्य प्रशासक थे, जिन्होंने राज्य को एक स्थायी और कुशल प्रशासन प्रदान किया। वे "शेर-ए-कश्मीर" के नाम से लोकप्रिय थे। मुख्यतः उन्हीं के कारण आज जम्मू और कश्मीर भारत संघ का अभिन्न अंग है। वे स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेता थे और देश को उनके बलिदान और उनकी उपलब्धियों पर अभिमान है।

---

* भूतपूर्व संसद सदस्य।

6

एक जननायक को श्रद्धांजलि

अजीज सेट*

भारत के स्वतंत्रता सेनानियों और राष्ट्र निर्माताओं में शेख अब्दुल्ला का एक गौरवपूर्ण और शीर्ष स्थान है। उनकी सेवाएं और त्याग की कहानियां आम लोगों की जबान पर हैं। शेख अब्दुल्ला अध्ययनशील रूचि के व्यक्ति थे और वह राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर राजनैतिक गतिविधि की ओर आकर्षित हुए। उनकी गिनती ऐसे साहसी व्यक्तियों और गिने-चुने नेताओं में की जाती है, जो अपने युग का सच्चा और पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं।

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की कोटि के नेता विरले ही होते हैं और ऐसे नेता भावी पीढ़ियों के लिये आदर्श स्वरूप होते हैं। सचे अर्थों में, शेख साहिब एक राजनीति-विशारद थे। उनका विश्वास कल्पना से अधिक काम करने में था। निश्चित रूप से इतिहास में उनका एक सम्मानीय स्थान है। वस्तुतः वह प्रभावशाली, समर्पित मानव और प्रतिभावान व्यक्ति थे।

शेख अब्दुल्ला का जन्म 5 सितम्बर, 1905 को श्रीनगर में हुआ था। अब्दुल्ला के जन्म से दो महीने पूर्व ही, उनके पिता शेख मोहम्मद इब्राहिम की मृत्यु हो गई थी। उनकी माता ने उनका पालन-पोषण बड़े प्यार और अनुराग के साथ किया और उन्हें उचित शिक्षा दिलाने में विशेष रूचि ली। शेख अब्दुल्ला अपनी माता का अत्यधिक आदर करते थे और वह प्रायः उनके प्रेम, बुद्धिमत्ता और संरक्षण का उल्लेख किया करते थे। मुख्य रूप से यह उनकी ही प्रेरणा का परिणाम है कि अल्पवयस्क और अनाथ अब्दुल्ला अपनी शिक्षा चालू रख सके और वह विज्ञान स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त कर सके।

उनके पिता पशमीना (रेशम) के व्यापारी थे। यह उनका पैतृक व्यापार था। उनकी पिता की मृत्यु के पश्चात् यह पारिवारिक व्यापार उनके नजदीकी रिश्तेदारों तथा मित्रों की

---

*कर्नाटक सरकार में परिवहन, निर्माण और हज समिति मंत्री।

सहायता से चलता रहा। इतना भी हुआ कि उनकी मां ने इस्लामिक असूलों की अवहेलना न करते हुए स्वयं को पर्दे (बुरके) में रख कर अपने व्यापार की देखभाल की। शेख साहिब के बड़े भाई शेख मकबूल सर अमर सिंह टैक्नीकल इंस्टीट्यूट, श्रीनगर में एक ड्राईंग शिक्षक थे।

शेख अब्दुल्ला को अपनी आरम्भिक बाल अवस्था से ही ज्ञान अर्जित करने की अत्यधिक रूचि थी। अपना खाली समय उन्होंने कभी भी खेल के मैदान में नहीं गंवाया। इसके विपरीत, वह अपना फुर्सत का समय विभिन्न विषयों की पुस्तकों के अध्ययन में बिताया करते थे। उन्हें उर्दू शायरी का बेहद शौक था। अल्लामा इकबाल की उपदेशों संबंधी शायरी में उनकी अत्यधिक रूचि थी। स्पष्टतः उन पर सर मोहम्मद इकबाल द्वारा पेश किए गए और प्रचारित किए गए खुदी (अहम् भाव अथवा आत्म सम्मान) के दर्शन का गहरा प्रभाव था। अपने बाद के जीवन में सभी प्रकार की कठिनाईयों का सामना करते हुए, उन्होंने आत्म-सम्मान आदर्शों की बड़ी मेहनत से रक्षा की।

वह अभी दसवीं पास ही कर पाये थे कि उनकी प्रिय माता उन्हें स्तब्ध और शोकाकुल स्थिति में छोड़ परलोक सिधार गई। यह क्षति उनके लिये असहनीय थी। एक श्रद्धालु पुत्र के रूप में उन्होंने अपनी प्रिय माता को सदा ही अत्यधिक सम्मान दिया। अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् उन्हें अनेक प्रकार की आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तथापि, उन्होंने किसी न किसी प्रकार एफ० एस० सी० (विज्ञान में प्रथम) पाठ्यक्रम को पूरा किया और लाहौर चले गये, जहां उन्होंने बी० एस० सी० की डिग्री प्राप्त करने लिये सुविख्यात इस्लामिया कालेज में प्रवेश लिया।

अपनी युवावस्था में उन्हें निर्धन कश्मीरियों की हालत पर भारी दुःख महसूस होता था। लाहौर में अपने निसहाय कश्मीरी-भाईयों के दुख-दर्द, उन्हें परेशान किया करते थे। किन्तु अपनी तत्कालीन स्थिति में वह उनके कष्टों को दूर करने में असमर्थ थे। एकांत में वह अशिक्षित, पिछड़े और दलित कश्मीरियों की दुर्दशा के बारे में सोचते रहते थे। अपने घर वापस लौट आने पर श्रीनगर में भी उन्हें निर्दोष पुरुष और महिलाओं पर सरकारी कर्मचारियों के अत्याचारों को देखना पड़ा। कश्मीरियों की निर्धनता और कठिनाइयां उनके लिए असहनीय होती जा रही थीं। उन दिनों लाहौर में कश्मीरी श्रमिकों का बुरी तरह से शोषण किया जाता था। जब कभी वह किसी युवा कश्मीरी को मिट्टी से भरा टोकरा या लकड़ी का लम्बा लट्ठा अथवा सीमेंट की भारी बोरियां उठाते देखते थे, तो वह वेदना से चीख उठते थे। उनके कश्मीरी होने के नाते उनके सहपाठी भी उनका मजाक उड़ाया करते थे। वे तिरस्कारपूर्वक उन्हें "हुट्टू" कहा करते थे। किन्तु अब्दुल्ला को अपना यह

अपमान सहन करना पड़ता था और अपने समर्थकों के अभाव में वह स्वयं को उत्पीड़ित महसूस करते।

बी० एस० सी० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात्, शेख अब्दुल्ला ने एम० एस० सी० का अध्ययन जारी रखने के लिये अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वहां भी उन्होंने यह महसूस किया कि कश्मीरियों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। वह उदास हो जाते थे और यह सोचा करते थे कि क्या कश्मीर में जन्म लेना कोई पाप है। पंजाब और उत्तरप्रदेश के व्यक्तियों के घृणास्पद रवैये से वह चिंतित रहा करते थे। वह इस तिरस्कार और घृणा की भावना मिटाने के लिये सोच में डूबे रहते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि कश्मीरियों को जीवन के हर क्षेत्र में सम्मान के साथ देखा जाये। कश्मीर का नाम और ख्याति बढ़ाने के लिये उनके दिल और दिमाग में अनेक अच्छे-अच्छे काम करने की प्रबल इच्छा थी।

यद्यपि वह कभी भी साम्प्रदायिक नहीं रहे और उन्हें सदैव संकीर्णता से घृणा रही, तथापि कश्मीरी मुसलमानों के प्रति अपने ही मुसलमान भाईयों द्वारा उपेक्षा का भाव रखना उनके बर्दास्त से बाहर था। हालांकि कश्मीरियों के प्रति लोगों की इस प्रकार की संकीर्णता का कारण उन्हें समझ में नहीं आता था फिर भी वह इस अनुचित तिरस्कार के जाल को काटने के लिये हर संभव प्रयास करने को दृढ़ संकल्प थे।

अलीगढ़ में उन दिनों वह छात्र ही थे, जब कश्मीर के एक भूतपूर्व मंत्री, श्री अश्विनय बैनर्जी का कश्मीर पर एक लेख प्रकाशित हुआ। बाद में, उस समय समाचार पत्रों में कश्मीर के बारे में एक के बाद एक, अनेक लेख प्रकाशित हुए। शेख अब्दुल्ला को यह देख कर दुःख हुआ कि इन सब लेखों में कश्मीर के मामले को अत्यधिक विद्वेषपूर्ण ढंग से हिन्दू-मुसलमान का मामला बना कर पेश किया गया था। श्री अश्विनय बैनर्जी तथा अन्य लेखकों के लेखों के इस साम्प्रदायिक सन्दर्भ का कुछेक समाचार पत्रों ने जोरदार विरोध किया। कुछ मुसलमान लेखकों को भी अपनी दुर्दशा बताने तथा अपने विचार व्यक्त करने के लिये आगे आना पड़ा। युवा अब्दुल्ला ने इस वाद-विवाद में अत्यधिक रूचि ली तथा वह इस प्रकार के लेखों में उल्लिखित तथ्यों और आंकड़ों का विवेकपूर्वक विश्लेषण करते थे।

एम० एस० सी० की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् वह 1930 में कश्मीर की शान्त वादी में वापिस लौटे, जहां श्रीनगर में कुछ शिक्षित युवा मुस्लिमों के सम्पर्क में आए। उन्होंने उनसे अपने कार्य में सहयोग प्रदान करने का निवेदन किया। वह उन युवा लोगों के मन में देशभक्तिपूर्ण विचार उत्पन्न करने में सफल रहे।

अपनी अथक शक्ति, प्रभावी भाषण-पटुता और उत्तम संगठनात्मक योग्यता के कारण

वह कश्मीर घाटी में शीघ्र ही लोकप्रिय हो गए। उनकी प्राथमिक राजनीतिक गतिविधियों में से एक नागरिक भर्ती बोर्ड के नियमों और विनियमों के विरुद्ध उनकी जोरदार याचिका थी। इस सिलसिले में मंत्रिमंडल से एक प्रतिनिधिमंडल भी मिला। उनका एक निकटस्थ मित्र अब्दुल अजीज भी इस प्रतिनिधिमंडल का सदस्य था। यद्यपि ज्ञापन में भर्ती नियमों के बेहूदा पहलुओं के बारे में स्पष्ट रूप से संकेत दिया गया था परन्तु मंत्रिमंडल का इस बारे में रुख नासमझी भरा, असहानुभूतिपूर्ण और बहुत ही निराशाजनक था। इस घटना से उस शान्त घाटी में, लोगों में उत्तेजना और रोष व्याप्त हो गया। शिक्षित मुस्लिम युवा अत्यधिक हतोत्साहित थे। उन्होंने अपनी निराशा और उचित मांगों को व्यक्त करने के लिए पंजाब के प्रमुख उर्दू अखबारों का समर्थन हासिल किया। जब सरकार का ध्यान लाहौर तथा उत्तर भारत के अन्य प्रमुख शहरों से प्रकाशित समाचार पत्रों की ओर गया, जो कश्मीर की क्रूर नीतियों को उजागर कर रहे थे, तो उसने शीघ्र ही उन अखबारों के कश्मीर घाटी में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया। "सियासत" अखबार को वहां आने पर पहले ही रोक लग चुकी थी और अब सभी समाचार पत्रों के प्रवेश पर रोक लग गई। "इनकलाब" जैसी देशभक्त पत्रिका और "मुस्लिम आउटलुक" को प्रकाशित करने पर पाबन्दी लगा दी गई। समाचार पत्रों पर प्रतिबंध से लोग और भी रुष्ट हो गए। बाद में, सरकार ने उन लोगों की जो कश्मीर सरकार के गलत कार्यों और अलोकतांत्रिक क्रियाकलापों के विरोधियों के रूप में जाने जाते थे, गतिविधियों पर रोक लगा दी। युवा लोगों की इस अपील को सरकार ने अनसुना कर दिया कि वह सही रास्ते पर आ जाये। प्राधिकारी युवा और शिक्षित मुस्लिमों के बढ़ते प्रभाव को कम करने पर तुले हुए थे। इस उथल-पुथल और सरकार के साथ टकराव वाले माहौल में शेख अब्दुल्ला ने सरकारी नौकरी प्रारम्भ की। वह गर्वनमेंट हाई स्कूल श्रीनगर में विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए उनका मूल वेतन 60 रुपये और मंहगाई भत्ता 22 रुपये था, जबकि कुछ हिन्दू युवा जो उनसे कम शिक्षित थे और जिनकी योग्यताएं भी संदिग्ध थीं, अधिक वेतन प्राप्त करते थे तथा उन्हें नौकरशाही में उच्च पद प्राप्त थे। शेख अब्दुल्ला को एक औसत पद और अपेक्षाकृत कम वेतन स्वीकार करना पड़ा। यह इस बात का स्पष्ट संकेत था कि तत्कालीन सरकार प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों पर देशभक्त युवाओं को नियुक्त न करने के प्रति सतर्क थी। देश के अन्य भागों में भारत मुक्ति आन्दोलन तेजी से गतिशील हो रहा था। कश्मीर भी धीरे-धीरे स्वतंत्रता के इस आन्दोलन से प्रभावित हो रहा था। इस अवधि के दौरान कश्मीर घाटी में लगभग 95 प्रतिशत जनसंख्या मुस्लिम थी।

सरकार द्वारा घाटी में ईद मनाने पर भी पाबन्दी लगा दी गई, जिसने आग में घी का काम किया और तभी पवित्र कुरान का अपनाम करने की एक और उत्तेजक घटना हुई। जिसमें जम्मू में जब धर्म का अपमान करने वाली इन दोनों घटनाओं का विस्तृत समाचार

श्रीनगर पहुंचा तो समस्त मुस्लिम जनसंख्या में घोर निराशा व्याप्त हो गई। तत्काल जामा मस्जिद में एक विशाल जनसभा आयोजित की गई और कई ठोस प्रस्ताव पारित किए गए। महाराजा कश्मीर से मुस्लिम लोगों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने के सभी प्रयासों से बाज आने को कहा गया। बैठक में राज्य में साम्प्रदायिक सद्भाव को हानि पहुंचाने वाले शरारती तत्वों को तत्काल पकड़ने और सजा देने की मांग की गई। सरकार को विरोध करने वाली सभा में शेख अब्दुल्ला की उपस्थिति पसंद नहीं आई। मस्जिद के दरवाजे पर एक सार्वजनिक सूचना चिपका दी गयी कि गवर्नर की अनुमति के बिना कोई भी भाषण न दिए जायें। यह चेतावनी मुसलमानों के धार्मिक मामलों में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप माना गया। इस मुस्लिम विरोधी रुख पर अपनी नाराजगी प्रकट करने के लिए तत्काल एक और जनसभा बुलाई गई। जिसमें गवर्नर के अनुचित व्यवहार के प्रति विरोध प्रकट करते हुए ओशीले भाषण दिए गए।

शेख अब्दुल्ला द्वारा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लिए जाने के प्रति सरकार ने बराबर नाराजगी प्रकट की। उन्हें अप्रभावी करने के लिए श्रीनगर से मुज्जफराबाद उनका स्थानान्तरण करने के शीघ्र आदेश जारी किए गए। शेख साहेब ने सरकार को अपने दुर्भावनापूर्ण स्थानांतरण की निंदा करते हुए एक कड़ा पत्र लिखकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। यह कहते हुए कि उनकी अंतरात्मा की आवाज उनके लिए उन्हें सरकारी नौकर के रूप में प्राप्त वेतन से अधिक महत्वपूर्ण हैं उन्होंने प्राधिकारियों की मनमानी के आगे झुकने से मना कर दिया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक मानव का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह नैतिक, सांस्कृतिक और अपने साथियों के सामाजिक कल्याण के लिए संघर्ष करे। उनके लिए कुछ रुपयों के लिए सरकारी अधिकारियों की मनमानी सहने से अपने मजहबी भाईयों की सेवा करना अधिक महत्वपूर्ण था। चूंकि सरकार अपनी बात पर अड़ी हुई थी, शेख अब्दुल्ला ने अपना त्यागपत्र दे दिया और खुले तौर पर राजनीति में कूद पड़े। इस पर भी उन्हें सरकार के आक्रोश का सामना करना पड़ा। सरकार ने उन्हें नौकरी से "बर्खास्त" घोषित कर दिया। जैसे भी हो, वह सरकारी नौकरी के शिकंजे से निकल चुके थे।

शीघ्र ही कश्मीर साम्प्रदायिक दंगों की आग में झुलसने लगा। राजनीतिक घटना चक्र ने अनेक मोड़ लिए और रूप धारण किए। शेख साहेब को कई बार गिरफ्तार कर जेल भेजा गया। उन्होंने कश्मीर को सामंतशाही से मुक्त कराने के लिए कई लोकप्रिय और जोरदार आन्दोलन चलाये। वह कश्मीरी मुसलमानों के निर्विवाद नेता और उद्धारक थे।

वर्ष 1946 में उन्होंने डोगरा महाराज को हटाने के लिए "कश्मीर छोड़ दो" आन्दोलन चलाया। उन्हें गिरफ्तार किया गया और जेल भेज दिया गया। इस बीच भारत स्वतंत्र हो

गया। वर्ष 1947 में सीमा पार से हो रही घुसपैठ को देखते हुए शेख अब्दुल्ला को भारी संतोष और खुशी के साथ जम्मू तथा कश्मीर का प्रधान मंत्री बनाया गया। बाद में अगस्त, 1953 में राज्य में हुए अजीबोगरीब राजनीतिक उथल-पुथल के फलस्वरूप उन्हें पद से हटा दिया गया और वर्ष 1964 तक ऊटकमंड में घर पर नजरबंद रखा गया।

वे कश्मीरियों को दिल से प्यार करते थे और कश्मीरी भी उनका तहेदिल से सम्मान और प्यार करते थे।

शेख साहिब में अपने बाल्यकाल से ही साहित्यिक प्रतिभा के बीज पनपने लगे थे। प्रतिभा के धनी होने के कारण वे बहुत अच्छी उर्दू भी लिखते थे। संवाद लेखक होने के कारण उन्होंने पवित्र कुरान की आयतें पैगम्बर मोहम्मद के उपदेश और सुविख्यात कवियों के दोहे सटीक ढंग से उद्धृत किए हैं।

उन्हें "शेरे-कश्मीर" का जो उच्च सम्मान दिया गया वह वास्तव में युक्तिसंगत है। वस्तुतः उनका दिल शेर का दिल था और वे अपने जीवन में स्वयं एक दन्तकथा थे।

7

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला: धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के पक्षधर

नारायण चौबे*

भारत में वर्तमान परिपेक्ष्य में शेख अब्दुल्ला का जीवन, विचारधारा और कार्य शैली का हमारे लोगों के लिए विशेष अर्थ है। ब्रिटिश शासकों के सहयोगी हिन्दू सामंती राजा के अधिपत्य वाले राज्य कश्मीर में एक मुस्लिम परिवार में जन्मे शेख अब्दुल्ला भारत के एक ऐसे महान व्यक्तित्व और कश्मीर की समस्त जनता के ऐसे निर्विवाद नेता के रूप में उभरे जो धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और लोकतंत्र की परम्पराओं के प्रति समर्पित था। शेख एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में उभरे और उन्होंने महाराजा और उसके संरक्षक, भारत में ब्रिटिश शासकों के निरंकुश शासन के विरुध घोर संघर्ष किया। पंडितजी का निजी प्रभाव, धर्मनिरपेक्षता और प्रजातंत्र के प्रति उनकी निष्ठा और महात्मा गांधी के हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए संघर्ष आदि ने शेख के जीवन को महानता के शिखर तक पहुंचाने में अपनी भूमिका अदा की।

जब पूरा देश बंगाल से पंजाब तक का क्षेत्र, सांप्रदायिकता की आग में जल रहा था, शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में कश्मीर में शांति व्याप्त थी और कश्मीरी जनता ने महाराजा के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष जारी रखा। धर्म के आधार पर देश का जब विभाजन हुआ तो मुस्लिम बहुल कश्मीर ने भारत में विलय होने का निर्णय किया। पाकिस्तान ने जब कश्मीर पर आक्रमण किया और इसे रौंदना चाहा तथा श्रीनगर पर कब्जा करना चाहा, इस महान योद्धा के नेतृत्व में नेशनल कांफ्रेंस के स्वयं सेवकों ने इस इरादे को नाकाम करने के लिये महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारतीय सेना के जवानों के कश्मीर पहुंचने से कुछ दिन पहले पाकिस्तान द्वारा किये गये कत्ले आम का मुकाबला किया। नेशनल कांफ्रेंस के इन स्वयं सेवकों ने हजारों पाकिस्तानी सैनिकों को गिरफ्तार करके उन्हें भारतीय सेना के अधिकारियों के सुपुर्द किया।

---

*भूतपूर्व संसद सदस्य

यह खेद की बात है कि भारत सरकार को इस राष्ट्रीय नेता और शेरे कश्मीर को उनकी ऐसी गतिविधियों के कारण कारावास भेजना पड़ा जो कि राज्य के हित में नहीं थी। पर यह शेख की महानता थी कि उन्होंने स्वयं को धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के पथ से विचलित नहीं होने दिया।

आज जबकि देश को, विशेष रूप से कश्मीर में, अस्थिरता, अव्यवस्था और बिखराव की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, शेख का जीवन और विचार विशेष महत्व रखते हैं। आज क्यों धर्मनिरपेक्ष कश्मीर सांप्रदायिकता से जकड़ा हुआ है? यह राष्ट्र के लिए खेद और शर्म की बात है कि आज कश्मीरी युवा पाकिस्तान के इशारे पर चल रहे हैं जबकि विगत काल में उनके पूर्वजों ने इसके विरुद्ध जमकर लड़ाई लड़ी थी। हमें, महान शेख के जीवन से सबक लेना चाहिए और कश्मीरी युवाओं को धर्मनिरपेक्षता की प्रासंगिकता समझनी चाहिए और उन्हें विघटनकारी ताकतों से चौकस रहना चाहिए। कश्मीर हमारा है। यह भारत का अंग है। उसकी अपनी अलग किस्म की समस्याएं हैं। पर ये समस्याएं कश्मीर तक सीमित नहीं हैं। पाकिस्तान के प्रश्रय से कश्मीर में सांप्रदायिकता और अस्थिरता पैदा करने वाली ताकतें सिर उठा रही हैं। पर एक तरह की सांप्रदायिकता की आग को दूसरी तरह की सांप्रदायिकता में नहीं बुझाया जा सकता। इसीलिये महान शेख का जीवन, संघर्ष और विचारधारा वर्तमान परिपेक्ष्य में महत्व रखती है।